ससुराल से नैहर तक

जागोरी
JAGORI

पिछली शोध पुस्तिकाऐं

1. मुझे पढ़ना है....
   बवाना पुनर्वास बस्ती में बालिका शिक्षा (लघु शोध)
   शोध टीम : जागोरी

2. भीलवाड़ा में डायन प्रथा (एक शोध)
   तारा अहलूवालिया
   बाल एवं महिला चेतना समिति

3. अधिकार और सम्मानः
   जयपुर महिला घरेलू कामगार
   शोध एवम तथ्य संग्रह : मेवा भारती
   तथ्य विश्लेषण एवम रिपोर्ट लेखन : सुरभि टन्डन महरोत्रा

4. पारो
   मेवात में खरीदी हुई एक औरत
   शोध, तथ्य, विश्लेषण व रपट
   शफीकुर रहमान खान

जागोरी
JAGORI

प्रकाशन जागोरी, 2009
बी-114, शिवालिक, मालवीय नगर
नई दिल्ली-110017
दूरभाष : 91-11-26691219, 26691220
हेल्पलाईन : 91-11-26692700
टेली फेक्स : 91-11-26691221
ई-मेल : jagori@jagori.org
वेबसाइट : www.jagori.com

शोध व रपट
रोमा

शोध में दिए गये तथ्य व आंकडों की सम्पूर्ण जिम्मेदारी शोधकर्ता पर है।

ससुराल से नैहर तक

जागोरी – एक नज़र

जागोरी की शुरुआत 1984 में हुई थी। यह औरतों का प्रशिक्षण, संप्रेक्षण, डॉक्यूमेंटेशन व संदर्भ केंद्र है। जागोरी व्यापक स्तर पर औरतों के जीवन पर सीधा प्रभाव डालने वाले अनेक मुद्दों जैसे सांप्रदायिक हिंसा, आर्थिक नीतियां, प्रजनन स्वास्थ्य कार्यक्रम व नीति और औरतों पर होने वाली हिंसा पर काम करती है। जागोरी के मुख्य उद्देश्य हैं–

- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में औरतों व बालिकाओं के सशक्तिकरण से जुडे मुद्दों पर चेतना जागृति लाना व संघर्ष करना।
- विभिन्न मुद्दों पर काम कर रहे समूहों के लिए सृजनात्मक पठन सामग्री व महत्वपूर्ण विषयों पर संप्रेक्षण सामग्री का प्रकाशन व वितरन करना।
- महिला समूहों, स्वयंसेवी संस्थाओं व विकास खण्ड की सूचना तथा विश्लेषण की जरूरतों को मद्देनजर रखते हुए औरतों के अधिकारों पर केंद्रित संदर्भ केंद्र का गठन करना।
- भारत में औरतों के दर्जे पर जानकारी प्रदान करना, मौजूदा सूचना स्रोतों का नारीवादी नजरिए से विश्लेषण करते हुए महिला संबंधी महत्वपूर्ण विषयों पर सक्रिय शोध कार्य करना।

जागोरी की शोध प्रक्रिया सहभागी और नारीवादी है। हम प्रभावित व पीडित लोगों के साथ मिलजुलकर उनके जीवन की स्थितियों का विश्लेषण करते हैं तथा समस्याओं के सार्थक समाधान के लिए सामूहिक प्रयास करते हैं। इन शोधों से उभरी जानकारी सामाजिक बदलाव का आधार भी बनती है जैसे–

- समुदायिक समस्याओं पर एकजुटता व संगठन की समझ बनाना।
- मुद्दे के प्रति नारीवादी नजरिए के साथ सामाजिक सोच बढाना।
- सकारात्मक सुझावों व सवालों के साथ उन कार्यक्षेत्रों एवं सरकार के साथ पैरवी करना।

पिछने दो वर्षों में अपने फैलोशिप कार्यक्रम के तहत् अलग–अलग राज्यों में महिला आंदोलन से जुडे कार्यकर्ताओं और नारीवादी संगठनों के साथ जुडकर जागोरी ने महिला हिंसा के विभिन्न पहलुओं पर शोध कार्यक्रम चलाए हैं। रीमा द्वारा किया गया यह अध्ययन इन्ही में से एक है। यह अध्ययन क्षेत्रिय आदिवासी और दलित महिलाओं के भूमि अधिकार के संघर्ष पर आधारित है।

आभार

कैमूर क्षेत्र में महिलाओं के न टूटने वाले भूमि व प्राकृतिक संसाधानों को बचाने के संघर्ष में सबसे ज्यादा आभार कैमूर क्षेत्र की महिलाओं का करती हूं। जिन्होंने अपने अथक प्रयास और सामूहिक राजनैतिक चेतना के तहत ऐसी मिसाल कायम की जो कि सरकार, प्रशासन, बुद्धिजीवी वर्ग, मीडिया, न्यायलीन व्यवस्था व पढ़े लिखे समाज के जिसे एक जबरदस्त सीख है। महिलाओं की सामूहिक राजनैतिक चेतना व सामूहिक रूप से भूमि पर नियंत्रण करने के बाद सामूहिक खेती करना केवल भूमि के संघर्ष से ही हासिल हो पाया जिसने इस पूरे आंदोलन में एक तीखापन पैदा किया। इस आंदोलन की नायक लालती देवी, हेमलता, धनपति, शांति देवी, पुष्पा, तेतरी, देवकी, बिफनी, सविता, मुन्नी, दौला, पार्वती, राजकुमारी, प्रभावती, दौलतदेवी, सुकवारी देवी, अनंती, गुलाबी देवी, गुलजारी देवी, इन्द्रावती, संतोशी, फुलरी देवी, फुलवन्ती देवी, संतरा, पती देवी, मनगीरा, सुषीला, रजवन्ती, कमलावती, सुकालो, दुर्गावती, सिलवन्ती, व अनेकों महिला लीडर है जिनका नाम यहां देना संभव नहीं है, उनको मैं यह आभार प्रकट करती हूं कि उन्होनें अपने आंदोलन से मुझ में एक नई शक्ति भर दी जिसकी वजह से मैं यह किताब लिख पाई। मेरे बहुत ही करीबी आंदोलन के साथी शांता भटटाचार्य, रामशकल, राजेन्द्र गोडं, जगदीश अगरिया और श्यामलाल का विशेष रूप से आभार प्रकट करती हूं जो तमाम अभावों के बावजूद इस आंदोलन से जी जान से जुटे रहे। मेरे वरिष्ठ साथी श्री अशोक चौधरी, मुन्नीलाल एवं श्री संजय गर्ग जी व राष्ट्रीय वनजन श्रमजीवी मंच के सभी साथीयों का कैमूर क्षेत्र में हुए इस आंदोलन के पीछे बहुत बड़ा राजनैतिक मार्गदर्शन रहा व पूर्ण सहयोग रहा।

इस किताब को पूर्ण करने में मेरे एडिटर साथी रजनीश का विशेष योगदान है जिन्होंने अपने अच्छे भाषा ज्ञान के चलते इस छोटी सी पुस्तक का संपादन करने में कड़ी मेहनत की। इस पूरे आंदोलन में महिला होने के नाते मेरी मां का हर दम सहयोग रहा जो कि हमारे जेल जाने से लेकर तमाम छोटी बड़ी घटनाओं पर लगातार नज़र रखती रही। और अगर उनको रोज़ रिपोर्ट न मिलती तो वे नाराज़ हो जाती।

जागोरी से मिले फेलोशिप सहयोग, प्रशिक्षण व सामग्री के आदान प्रदान ने निरन्तर सहयोग दिया है, जिसके प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। इस शोध पुस्तिका का प्रकाशन इसी साझे सहयोग की एक कड़ी है।

धन्यवाद

रोमा

भूमिका और परिचय

उत्तर प्रदेश का बिहार, झारखंड, छतीसगढ, मध्यप्रदेश की सीमा से घिरा घने वनों से आच्छादित सोनांचल क्षेत्र जो कि आज प्राकृतिक संसाधनो पर नियत्रंण के सवाल पर महिला अभिव्यक्ति का गढ़ बन चुका है। सोनांचल का यह कैमूर क्षेत्र उत्तर प्रदेश के तीन जिलों सोनभद्र, चन्दौली एवं मिर्जापुर में फैला हुआ है। इस नक्सल प्रभावित क्षेत्र में दलित, आदिवासी महिलाओं द्वारा किये जा रहे आन्दोलन ने राजसत्ता को एक जबरदस्त चुनौती दी है, तथा वन एवं भूमि पर अपना दख़ल क़ायम करने में अभूतपूर्व सफलता पाई है। यह आन्दोलन वनों पर निर्भर रहने वाले भूमिहीन, खेतीहर मजदूरों का आन्दोलन है, जिसने शासक वर्गो को यह संदेश दिया है कि प्राकृतिक संसाधनों पर केवल उन्हीं का हक होगा जो उन पर निर्भर हैं।

यह कभी भी किसी ने नहीं सोचा था कि इतने पिछड़े इलाके में गांव की अनपढ़ महिलाओं द्वारा दबंगो,

माफियाओ, उच्चजाति, सांमतों, वनविभाग एवं पुलिस विभाग व पितृसत्तात्मक समाज के उत्पीड़न का मुकाबला भूमि के दख़ल से करेंगी। आज इस क्षेत्र में महिलाओ के नेतत्व में 15,000 एकड़ से भी ऊपर भूमि का दखल कर खाली पड़ी भूमि को अपने नियंत्रण में ले लिया है। जिसने प्रदेश सरकार को झंझोड़ कर रख दिया है। पिछले वर्ष स्थानीय जनसंगठन कैमूर क्षेत्र मज़दूर महिला किसान संघर्ष समिति के असंख्य कार्यकर्ताओं पर सैंकड़ों एफ आई आर व जेल में निरुध किये जाने के बाद भी महिलाओं द्वारा दख़ल की गई एक इंच भूमि पर से भी अपना दख़ल नहीं छोड़ा। वन एवं भूमि पर अपने दखल अधिकार के इस निर्णायक संघर्ष के पीछे वर्षो से इस क्षेत्र में जनवादी प्रक्रिया को मजबूत करने के लिये राजनैतिक रुप से इन समुदायों के बीच सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा किया गया काम है। जिसके लिए वंचित समुदायों में जिस राजनैतिक सोच एवं चेतना का संचार हो रहा था उसका गहन रुप से अध्ययन किया गया। इसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण था महिलाओं में अपनी सामूहिक राजनैतिक चेतना का विकास, जिसे कोई भी पार्टियों, ट्रेड यूनियन संगठन या फिर अन्य सामाजिक संगठनों द्वारा हमेशा नज़र अंदाज किया गया था। इन साठ सालों में वंचित समुदायों ने भी अपनी स्थिति का आकलन किया और उनमें यह सोच पैदा हुई कि उन्हे उनकी घुटन भरी जिन्दगी और ग़ैरबराबरी से कैसे निज़ात मिलेगी और संसाधनों और रोजगार व अन्य विकास के साधन उन्हे कैसे मिल पायेंगे और इन पर उनका नियंत्रण कैसे होगा ?

'ससुराल से नैहर तक' यह नाम है महिलाओं द्वारा भूमि पर अपने हक–अधिकार को लेकर छेड़े गये इस आन्दोलन का। प्रख्यात सामाजिक कार्यकर्त्ता कल्यानी मेनन सेन जब इस इलाके में दौरे पर आई और उन्होंने

जब यहाँ की महिलाओं को भूमि आन्दोलन में इतनी मजबूती से जुड़े हुए देखा, तब बातचीत में सवाल आया कि समाज में महिलाओं पर इतनी बंदिशों के बावजूद महिलाओं को इतनी संख्या में कैसे जोड़ा गया। तब शांता भट्टाचार्य ने इस बात को विश्लेषित किया कि महिलाओं ने संगठन की बात को अपने मायके और रिश्तेदारों तक जोड़ा क्योंकि इन गाँवों में वो आज़ादी के साथ आ जा सकती थीं इस लिए उनके लिए इन गाँवों में जाना आसान था। अपने मायके और अन्य रिश्तेदारों के गाँवों में जा कर उन्होंने जंगल जमीन व संसाधनों पर अपने हक की बातों को करना शुरू किया। दूसरी सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन्हें ये बात समझाने वाला नेतृत्व भी महिला का था, जिससे उनके लिए संवाद स्थापित करना आसान हो गया। इस बात को सुनकर कल्याणी जी अपने आप को रोक नहीं पायी और उन्होंने मुझे कहा कि महिलाओं के भूमि आंदोलन के इस नेतत्व पर एक पुस्तक लिखी जाये जिसका शीर्षक **'ससुराल से नैहर तक'** ही होना चाहिये। प्रस्तुत पुस्तक में महिलाओं की इसी मुखर अभिव्यक्ति को ही विश्लेषित करते हुए संक्षेप में पेश करने की कोशिश की गयी है। भविष्य में इसके लिए ज़रूर प्रयासरत रहूंगी कि इसका विस्तृत रूप भी कभी आप के सामने रख सकूं।

उत्तर प्रदेश का यह कैमूर क्षेत्र, जिसमें जनपद सोनभद्र, मिर्जापुर और चन्दौली जिले शामिल हैं, एक ऐसा क्षेत्र है जहां देश में सबसे अधिक भूमि सम्बंधी विवाद हैं। जिनका जिक्र अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जाति आयुक्त की 29 वीं रपट में भी बहुत विस्तार से दिया गया है। यहां के भूमि विवाद आज़ादी के समय से ही बहुत चर्चित हैं। क्योंकि यही एक ऐसा क्षेत्र था, जहां प्राकृतिक संसाधनों की प्रचूर मात्रा थी और खनिजो का भी भरपूर भंडार था। इसी भंडार को राष्ट्रीय विकास के नाम पर राष्ट्र को समर्पित करने के लिये बड़े पैमाने पर सार्वजनिक क्षेत्र के कारख़ानो को लगाया गया। रिहन्द बांध, बिजली, स्टील, सीमेंट कारख़ाने और इसी तरह यह इलाका खासतौर पर सिंगरौली क्षेत्र देश में **उर्जा राजधानी** के नाम से जाना जाने लगा। उर्जा को देश की प्रगति का पैमाना माना गया, लेकिन उस प्रगति को सरकार द्वारा यहां पर रह रहे लाखों आदिवासियों, दलितों की प्रगति और विकास को ताक पर रख कर किया गया। चूंकि इस क्षेत्र में आज़ादी के समय से न तो भूमि की कोई पैमाईशं की गयी, न ही कोई भूमि बन्दोबस्त हुआ और न ही आदिवासियों के पास अपने कोई भूमि रिकार्ड थे। इन सभी कारणों के चलते उनकी भूमि की जबरदस्त लूट हुई और पुश्तों से रह रहे आदिवासी अपने ही घरों में बेघर हो गये। सिंगरौली का विस्थापन पूरे देश में एक त्रासदी बन कर रह गया है। जहां एक बार नहीं तीन–तीन बार आदिवासीयों को विस्थापित किया गया। जो कि देश के ऐसे नागरिक थे जिन्होंने अंग्रेजों की गुलामी को स्वीकार नहीं किया था लेकिन उन्हें आज़ाद भारत में केवल **लाभार्थी** बना दिया गया।

महिलाओं के भूमि और प्राकृतिक संसाधनों के इस संघर्ष को समझने के लिये सबसे पहले हम यहां भूमि और प्राकृतिक संसाधनों की स्थिति क्या थी उसके बारे में उल्लेख करना चाहेंगे। चूंकि इसी तीव्र भूमि विवाद के कारण ही भूमि के इस आंदोलन ने राजसत्ता को सीधी चुनौती दी है। इस आंदोलन में तीखापन दो तरह से पैदा हुआ एक तो यह आंदोलन भूमि और जंगल को लेकर एक राजनैतिक संघर्ष था और दूसरा महत्वपूर्ण पहलू इस आंदोलन में महिलाओं का जुड़ना था। यह आंदोलन इस वर्ग का और खास तौर पर महिलाओं के अन्दर सामूहिक राजनैतिक चेतना का आधार बना, जो कि सदियों से चली आ रही सामंती, पितृसत्तात्मक व्यवस्था और उत्पीड़न की व्यवस्था को ध्वस्त करना चाहती थी। यह भी वास्तविकता है कि यह चेतना देश के हर कोने में मौजूद है। लेकिन विडंबना है कि इस चेतना को देखने में और भाँपने में मध्यमवर्गीय सामाजिक कार्यकर्ता और विभिन्न कार्यरत स्वयं सेवी संगठन असमर्थ रहे हैं। क्योंकि उनके ऐजेंडे में यह मुद्दा शामिल ही नहीं है। दूसरा कारण यह भी है कि उत्तर प्रदेश के अधिकतर स्वंय सेवी संस्थाओं के पदाधिकारी उच्च्य जाति से व जमींदार तबकों से हैं। जो कि इस मुद्दे यानि भूमि पर वंचित तबकों के अधिकार को बर्दाश्त नहीं कर पाते। वे चाहते हैं कि आज भी दलित, आदिवासी उनकी भूमि पर बेगारी या फिर कम वेतन पर ही काम करते रहें। इसके साथ एक और महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि भूमि के मुद्दे पर व जंगल के संसाधनों के ऊपर काम करने के लिये फंड भी नहीं मिलता है। जिससे इस मुद्दे पर संस्थायें काम करना पसंद नहीं करतीं। वास्तविकता तो यह है कि इस मुद्दे पर काम करने में बहुत से झंझट हैं तथा सीधे सीधे राजसत्ता से टकराव है, जिसमें कुछ भी हो सकता है। इस चुनौती को झेलने के लिये अधिकांश संगठन तैयार नहीं हैं। जबकि सामाजिक बदलाव का दूसरा नाम ही उत्पादन सम्बंधों में बुनियादी बदलाव को लाना है जिससे उत्पादक शक्तियां आज़ाद हो और यह उत्पीड़न की व्यवस्था खत्म हो।

कैमूर क्षेत्र की महिलाओं ने यह तय कर लिया था कि उनको अपनी घुटन भरी जिन्दगी, बेगारी, गुलामी, सामंती और पुलिसिया उत्पीड़न से मुक्ति पानी है जिसके लिये उन्हें मरना भी मंजूर था। इस क्षेत्र में भूमि लगातार बड़े पूंजीपतियों के हाथो में सिमटती चली जा रही थी और जंगलों से भी उनके बच्चों व पतियों को

नक्सली बना कर या तो एनकाउंटर किया जा रहा था या फिर वर्षो तक जेलों में सड़ने के लिये ठूस दिया जाता था। चारो तरफ एक डर और आंतक का माहौल था। आदिवासियों के खिलाफ तमाम तरह के भ्रामक प्रचार और उनके प्रति एक नफरत का माहौल पनप रहा था। इन तबकों को शक की नज़र से देखा जाता था। इन्हीं सब परिस्थितियों में यहाँ जनसंगठन 'कैमूर क्षेत्र महिला मज़दूर किसान संघर्ष समिति' का गठन सन् 2000 में किया गया। जहां जंगल की भूमि पर वनविभाग की मनमानी व बेदख़ली की प्रक्रिया को रोकने के लिये तहसील राबर्टसगंज के बसौली से लगे

छः गांवों के लोगों को वनविभाग ने जब बेदख़ली का नोटिस दे दिया व बेरहमी से उजाड़ने लगे जिसमें दो मासूम बच्चों की मौत हो गयी व उनकी दादी बच्चों की मौत के ग़म से चल बसी, तब पूरे इलाके में वनविभाग के प्रति गुस्सा फैला और महिलाओं ने संगठित होना शुरु किया। इस आंदोलन में महिलाओं ने वनविभाग से डट कर मुकाबला किया। उनके खेतों में जब वनविभाग के कर्मचारी बबूल का बीज छिड़कने आये तो बसौली गांव की सुकवारी देवी ने उन्हें चुनौती दी और कहा 'कि क्या तुम लोग भी बबूल खाते हो जो हमारे खेतों में बबूल का बीया छिड़क रहे हो'। तिलौली गांव की संतोषी देवी के नेतृत्व में महिलायें उनकी जीप में पड़े तमाम बबूल के बीज के बोरों को उतार कर चढ़ बैठीं और उनकी जीप को घेर वनविभाग के कर्मचारियों की पिटाई करने लगीं। वनविभाग के कर्मचारी अपनी जीप छोड़ कर भागे और महिलाओं ने बबूल के बीज के बोरों में आग लगा दी।

यह पहली बार हुआ था। दलित आदिवासीयों ने अपने बलबूते पर वनविभाग व पुलिस को खदेड़ा था। नहीं तो हमेशा गांव के सामंती तबके वनविभाग और पुलिस का साथ देते थे व गांव के दलित आदिवासियों का जीना मुहाल था। महिलाओं ने जब यहां मोर्चा सम्भाला

तो उन्हें संगठित होने के लिए बाहर से भी मदद मिलने लगी जो कि जनसंगठन की मदद थी न कि किसी राजनैतिक पार्टी की। यहां के छह गांवों बसौली, तिलौली, अमौली, बहुआर, बघुवारी और रघुनाथपुर में पिछले 5 वर्ष से दलित आदिवासियों को वनविभाग द्वारा खेती नहीं करने दी जा रही थी। उन्हें कहा जा रहा था कि यह भूमि वनविभाग की है व जो लोग सदीयों से उसपर खेती कर रहे थे उन्हें भगाने के लिये वनविभाग, पुलिस व सामंत तरह तरह से उत्पीड़न

कर रहे थे। इस आंदोलन ने पहली बार यहां दलित आदवासीयों के जनसंगठन ' कैमूर क्षेत्र मज़दूर किसान संघर्ष समिति' का गठन एक आमसभा में किया था। लेकिन बसौली में महिलाओं के इस संघर्ष में कूदने के बाद इस संगठन का नाम 'कैमूर क्षेत्र महिला मज़दूर किसान संघर्ष समिति' पड़ गया। संगठन के गठन के चंद ही महीनों बाद महिलाओं के नेतृत्व में इन छहों गांवों की लगभग 1500 एकड़ भूमि पर अपना दख़ल क़ायम किया और संगठन की ताकत से पांच साल से रुकी हुई खेती पर जोत कोड़ शुरु कर दी। इन गांवों के 20 लोगों जिसमें ज्यादातर महिलायें थीं के ऊपर नक्सली होने का आरोप लगाया गया। उन पर भारतीय वन अधिनियम 1927 एवं अन्य वन

कानूनों के तहत व भारतीय दण्ड संहिता की विभिन्न धाराओं के तहत झूठे केस लगाये गये। यह केस आज भी लड़े जा रहे हैं, लेकिन दख़ल की गयी 1500 एकड़ भूमि पर दलित आदिवासियों का कब्जा बरकरार है।

बसौली से ही पूरे कैमूर क्षेत्र में महिलाओं के नेतृत्व में आंदोलन का फैलाव हुआ और बड़े पैमाने पर महिलायें अपने जल, जंगल और ज़मीन के अधिकार को लेकर आंदोलित होने लगी और संगठन से जुड़ने लगीं। अब अपने गांव में संगठन बनाने के लिये पुरुष भी जब हम से बात करने आते तो अपने साथ 8–10 महिलाओं को लेकर आते थे। सबसे पहले वह अपने संगठन के नाम का बैनर और झंडा बनवाते। उनके अंदर यह विश्वास मजबूत हो रहा था कि यह झंडा ही उनकी पहचान है और वही उनको सामंती ताकतों से लड़ने की हिम्मत देता है। उसके बाद वे अपने गांव में मीटिंग रखते थे।

इस इलाके में महिलाओं, आदिवासियों व दलितों का वन एवं भूमि पर अधिकार के सवाल पर इतना बड़ा आंदोलन इसलिये भी शुरु हुआ, क्योंकि यहां की समस्त भूमि जिसपर आदिवासी सदियों से काबिज थे, वे या तो बड़े सामंतों के कब्ज़े में थीं या फिर आज़ादी के बाद वनविभाग ने गलत प्रक्रिया के तहत अपने कब्ज़े में कर ली थीं और उनका मालिक बन बैठा था। आज़ादी के समय पूरे देश में जमींदारी प्रथा को ख़त्म करने के लिये सभी राज्यों ने कानूनों को बना कर लागू किया। लेकिन यह जमीदारों और उच्च जातियों को गवारा नहीं था। उन्होंने अपने यहां काम कर रहे तमाम बंधुआ मज़दूरों को जिन्होंने उनकी भूमि को उपजाऊ बनाया था, उन्हें उन भूमियों से खदेड़ दिया। क्योंकि इस नये कानून के तहत यह प्रावधान किया गया था, जो जमीन बोयेगा वही ज़मीन का मालिक भी होगा। ज़मीदारों ने इस डर से कि कहीं बेगारी करने वाले मज़दूरों के नाम भूमि न हो जाये फौरन भूमि रिकार्डो में हेरा फेरी कर के इन हजारों हजारों एकड़ ज़मीनों को जिसे दलित आदिवासीयों ने अपनी मेहनत से उपजाऊ बनाया था को अपने नाम, रिश्तेदारों के नाम और यहां तक कि जानवरों जैसे कुत्ते, बिल्लियों तक के नाम करवा लिया। बेगारी करने वाले इन मज़दूरों को पहाड़, बंजर और जंगलों की ओर धकेल दिया गया। ऐसे में जहां जहां जिसको जो भूमि मिली उसपर छोटी मोटी खेती कर यह परिवार अपना पेट पालने लगे। इस तरह से यहां के या यूं कहें पूरे उत्तर प्रदेश के जमीदारों ने सरकारी तंत्र से मिलकर पूरे समाज को धोखा दिया और शासक वर्गो से मिलकर आज़ादी के एकसठ साल बाद भी भूमि का एक बहुत बड़ा हिस्सा फर्जी ढ़ग से अपने कब्ज़े में रखा हुआ है। रही सही कसर वनविभाग ने पूरी कर दी जिसने ज़मीदारी प्रथा के समाप्त होने पर रियासती वनों को जब अर्जित किया तब यह जानने का प्रयास नहीं किया कि इन जंगलों के अन्दर कितने प्रकार के गांव बसे हुये हैं व कितने आदिवासी इन वनों पर निर्भर हैं। इस तरह से आज़ादी के बाद भारत सरकार ने एक तरफ ज़मीदारी को समाप्त करने के लिये ज़मीदारी

विनाश कानून बनाया तो दूसरी तरफ वनविभाग जैसी संस्था को जिसे अंग्रेजों ने बनाया था को वनों का बड़ा क्षेत्र फल अधीन कर देश का सबसे बड़ा ज़मीदार बना दिया। इस तरह से जंगलों में रहने वाले तमाम वनाश्रित समुदाय आज़ादी के बाद एक बार फिर वनविभाग के गुलाम हो गये। जिन्हें अपने संवैधानिक अधिकारों को इस्तेमाल करने के लिये भी वनविभाग से पूछना पड़ता था। पूरे देश के जंगल क्षेत्रों की तरह यहां कैमूर क्षेत्र में भी यही हुआ। यहां पर आज़ादी के समय 90 प्रतिशत हिस्सा जंगल था, जहां आदिवासियों का वास था। जोकि सदियों से इन जंगलों में रहते चले आ रहे थे, वे अचानक जंगलों के दुश्मन करार दे दिये गये। उन्हें **अतिक्रमणकारी** कहा जाने लगा। अपने ही देस में यहां के आदिवासी परदेसी होकर रह गये। ऐसे में सरकार ने भी इनके मौलिक अधिकारों के लिए कोई ठोस नीति नहीं बनाई। यही नहीं आज़ादी के बाद भी वनविभाग ने जंगल लगाने के नाम पर ग्राम सभा की तमाम सार्वजनिक उपयोग की भूमि को भी हथिया लिया और उसका भी मालिक बन बैठा।

हर तरफ से आदिवासियों पर मार पड़ने लगी तब अचानक औद्योगिकीकरण करने के लिये जनपद सोनभद्र के दक्षिणी इलाके को उसमें प्रचुर मात्रा में खनिज सम्पदा होने के तहत चिन्हित किया गया और आज़ादी के ठीक बाद से यहां पर नेहरु के सपने के भारत की नींव रखी गई। यहां पर सार्वजनिक और निजि कम्पनियों का उर्जा पैदा करने के लिये जाल सा बिछ गया। एन.टी.पी.सी, हिण्डालको, कोयला खदाने आदि कितने ही कारख़ानों की यहां स्थापना की गयी जिनके कारण बड़े पैमाने पर विस्थापन किया गया। जिसकी गाज यहां के मूल निवासी आदिवासियों पर ही गिरी। रिहन्द बांध के लिए कुल 141 गांवों को विस्थापित किया गया। जिन के लिये किसी तरह की वैकल्पिक व्यवस्था नहीं की गयी। इस इलाके से लगभग 20,000 लोग लापता हो गये, जिनका आज तक कोई पता नहीं चल पाया। इन परिस्थियों में यहां के भूमि विवाद इतने जटिल हो गये कि यहां यह मुद्दा एक ज्वालामुखी की तरह अन्दर ही अन्दर सुलगने लगा।

ऐसा नहीं कि इन भूमि विवादों को सुलझाने के लिये पूर्व सरकारों द्वारा कोई पहल नहीं की गई। इस इलाके

के लिये मंगलदेव विशारद कमेटी, महेश्वर प्रसाद कमेटी और अनुसूचित जनजाति आयोग की 29 वीं रिर्पोट और इनके अलावा न जाने दूसरे कितने आदेश हुये, लेकिन इस इलाके में दलित–आदिवासियों की छीनी गई भूमि उन्हें वापिस नहीं मिली। भूमि के लिये समय समय पर वामदलों, समाजवादियों, ट्रेडयूनियनों द्वारा भी कई आंदोलन किये गये लेकिन भूमि से विस्थापन को रोकने का कोई रास्ता नहीं निकल पाया। आखिरकार 90 के दशक तक आते–आते भूमि के तमाम आंदोलनों को 'नक्सलवादी' आंदोलन की संज्ञा प्रशासन द्वारा दी जाने लगी। और अब नक्सलवादी होने के आरोप में आदिवासियों और दलितों का एनकाउंटर किया जाने लगा। ऐसे में इस इलाके में जनवादी

जगह बिल्कुल ख़त्म कर दी गई। भूमि के सवाल पर, मानवाधिकारों के हनन के संबध में कोई भी आवाज़ अगर उठती तो उसे ख़ामोश कर दिया जाता था।

ऐसे ही माहौल में जहां के ग़रीब तबकों खासतौर पर आदिवासियों और दलितों के एक पूरे समाज के खिलाफ बड़े पैमाने पर उच्च जाति और वर्गो का दुष्प्रचार था, महिलाओं के नेतृत्व में सन् 2000 में जनसंगठन बनाने के प्रयास हुए और तब से भूमि के मुद्दे के इर्द गिर्द यहां का ग़रीब समाज आंदोलित होने लगा।

बसौली के बाद अगला पड़ाव ग्राम दरमा

जमीनियां हम न छोड़ब
{ हम जमींन नहीं छोड़ेगें }

दरमा गांव विन्धपर्वत माला की कैमूर श्रंखला की पहाड़ियों की तलहटी में बसा हुआ उरांव आदिवासीयों का एक गांव है, जहां सरकारी सुविधायें बस नाम मात्र की हैं। लोग मेहनत मज़दूरी व थोड़ी बहुत किसानी के ज़रिये जीवनयापन करते हैं। यह आदिवासी दसियों पीढ़ियों से यहां आबाद हैं। इनके सीधेपन व पढ़े लिखे न होने का फायदा इस इलाके के चतुर चालाक लोगों ने भरपूर उठाया है। खूंट कटी कर खेती लायक ये जमीन तैयार करते पर कागज पर ये जमींन इलाके के तेजतर्रार लोगों के नाम हो जाती, जोकि बाद में पुलिस प्रशासन व राजस्व के कर्मचारियों, अधिकारियों की मिली भगत से जमीनों पर कब्जा कर लेते थे। वन विभाग के भ्रष्ट कर्मचारियों, अधिकारियों ने भी जंगल के बीचों बीच पैसे लेकर संपन्न लोगों को जमीनें उपलब्ध कराई।

वहीं पर गरीब दलित आदिवासी को उनकी पुश्तैनी जोत कोड़ की ज़मीनो से लगातार बेदखल किया गया। यही छल वन विभाग के लोगो ने दरमा वालों के साथ करना चाहा। पटना रेंज के रेजर सौफीराम ने जब सन् 2003 में आदिवासीयों की जमीनों पर पौधा लगवाने के लिये गढढे खुदवाना शुरू किया तो गांव वालों में हड़कम्प मच गया। वन विभाग का कहना था कि यह जंगल की ज़मीन है अतः इस पर वृक्षारोपण होगा। इस पर कुछ लोगों ने अदालत में गुहार लगाई। प्रशासन में अर्जियां दी गयी पर नतीजा कुछ नहीं निकला। उलटे वन विभाग ने प्रशासन से सांठगाठ कर बन्दोबस्त अधिकारी की अदालत से मुकदमा ख़ारिज करवा दिया। इधर जबरन वृक्षारोपण के लिये पौधे मंगवा लिये गये। ज़मीनें हाथ से निकलती देख अंतिम उपाय के

रूप में महिलाओं ने सीधी कार्यवाही कर ज़मीन अपने कब्जे में ली और फसल बो डाली। बौखलाये हुए वन अधिकारियों ने दुस्साहसिक कदम उठाया। **22 जुलाई 2004 को जब सैकड़ों महिलायें व बच्चे खेतों में काम कर रहे थे तब पी.ए.सी व पुलिस के जवानो तथा वन विभाग दल बल के साथ दरमा पहुंचे और निहत्थे लोगों पर अंधाधुंध फायरिंग करने लगे।** इस गोली बारी से अधिकांश बच्चे और महिलायें घायल हो गईं। लेकिन उन्होंने बिना हिम्मत हारे पूरी फोंस पर पत्थर बाजी शुरू कर दी। जिससे सारी फोर्स भाग गई। उसके विरोध में महिलाओं ने भारी जुलूस निकाल कर पन्नूगंज थाना जो कि उनके गांव से 10 कि.मी. की दूरी पर था का घेराव किया और दोषी कर्मचारियों की अविलम्ब गिरफ्तारी की मांग की। ग्रामीणों की कोई परवाह नहीं की गई, न ही उनकी मरहम पट्टी करवाई गई और न ही उनकी शिकायत पर वनविभाग के ऊपर एफ.आई.आर. दर्ज की गई। प्रशासन ने उलटे महिलाओं एवं आदिवासी लीडरों पर केस लाद दिये। वन विभाग ने तमाम फर्जी मुकदमों में 304 ग्रामीणों को फंसाया।

लेकिन प्रशासन के इस दमनात्मक रवैये ने यहां के संघर्षो को एक नया ऐतिहासिक मोड़ दे दिया। बस फिर क्या था कि महिलायें चंड़ी बन कर हर समय फोर्स से आमने–सामने रहतीं। इससे यह तो हो गया कि महिलाओं का यह रूप देखकर पुलिस व प्रशासन की हिम्मत नहीं पड़ी की वे गांव में दोबारा आ जायें और न ही प्रशासन की हिम्मत थी कि उस भूमि को खाली करवा लें। ठीक गोली कांड के बाद महिलाओं ने पूरी भूमि पर झोपड़ियां लगा दीं, जिन्हें प्रशासन द्वारा आ कर उजाड़ दिया गया। लेकिन जैसे ही फोर्स वापिस लौटी वैसे ही महिलाओं ने वहां दोबारा झोपड़ियां फिर लगा दीं। 27 मई 2006 को कोर्ट में दरमा निवासियों की फाईलों पर सुनवाई थी, लेकिन वहां भी उनको निराशा हाथ लगी व फैसला वन विभाग के पक्ष में चला गया। तब भी यह तय था कि अब फोर्स गांव में नहीं घुस सकेगी।

अपनी ताकत के बलबूते सूखा होने के बावजूद दरमा के लोगों ने उस पूरी भूमि को एक साथ मिल कर जोत डाला जोकि अपने आप में इस पूरे इलाके के लिये एक मिसाल बन गया। एक साथ 100 हल चलते, पुरूष हल चलाते और महिलायें पीछे से अरहर के बीज बो देती। इस तरह से एक साल बाद सामूहिक रूप से फसल जब काटी गई तो कुल 96 क्विन्टल अरहर की पैदावार हुई। इस पैदावार ने इस इलाके में जैसे एक नई क्रांति फैला दी। दरमा के आस पास के 20 किमी के क्षेत्रफल

में स्वतः ही बड़े पैमाने पर महिलायें संगठित होने लगीं तथा दरमा की महिलाओं के पास आकर उन्हें उनके गांव में संगठन बनाने के लिये आग्रह करने लगी।

इसी तरह दूसरे वर्ष भी सूखा पड़ने के बावजूद फिर खेती की गई और 72 क्विन्टल पैदावार हासिल की गई। इस बार दरमा में इस बात की हवा थी कि अब बड़े पैमाने पर फिर फोर्स आ कर हमला बोलेगी। इसकी भनक पाते ही कैमूर क्षेत्र मजदूर किसान महिला संघर्ष समिति की मदद से पटना रेंज कार्यालय पर महिलाओं ने फर्जी मुकदमों की वापसी के लिये अनिश्चितकालीन धरना शुरू कर दिया। इस धरने को पूरे एक साल तक महिलाओं द्वारा चलाया गया। लेकिन महिलाओं ने फैसला किया कि जब तक ये फर्जी केस वापिस नहीं लिये जायेंगे, तब तक यह धरना नहीं उठेगा। इसी आड़ में पिछले वर्ष खेती करने की रणनीति बनाई गई। इस फसल से न केवल ग्रामीणों के घरों में खाने को हुआ बल्कि आंदोलन में हुए तमाम खर्च को भी इस फसल को बेच कर पूरा किया गया।

दरमा की महिलाओं के नेतृत्व में जमीनों को बचाने के इस सामूहिक प्रयास ने पूरे जनपद में एक नई चेतना फैलाने का काम किया। सामूहिक खेती का यह अनूठा प्रयोग आज चर्चा का विषय बन चुका है। इसे और सशक्त व टिकाऊ बनाने के लिये 8–9 जुलाई 2006 की गोष्ठी में इसके साथ कई रचनात्मक कार्यक्रम शुरू करने के निर्णय लिये गयें। संगठन ने निर्णय लिया कि इन ज़मीनों के लिये सिंचाई की व्यवस्था की जायेगी, गांव के सभी स्कूल जाने वाले बच्चों को यूनीफार्म दी जायेंगी। स्वास्थ सम्बन्धी समस्याओं के लिये संगठन के स्तर से डाक्टर की व्यवस्था की जायेगी, अनाज के भंडारन के लिये व्यवस्था करने का सुझाव भी आया। यह भी महत्वपूर्ण सुझाव आया कि बाजार के चंगुल से बचने के लिये इलाके में छोटे–छोटे हाट शुरू किये जायें, जहां मेहनतकश वर्ग को रियायती दामों में उत्पाद उपलब्ध कराये जायें।

दरमा की यह छोटी सी लड़ाई अपने आप में लम्बी राजनैतिक लड़ाई के बीज संजोये है। आज जब खेती को पूरी तरह से व्यवसाय तथा जमीन को खरीदी व बेची जाने वाली वस्तु मान लिया गया है, दरमा की महिलाओं ने स्पष्ट लहजे में संदेश दिया है कि जंगल

जमीन जीवन के आधार हैं, महज संसाधन भर नहीं। आज जब सभी राजनैतिक दल इस बुनियादी लड़ाई से मुंह मोड़ चुके हैं, तब इन छोटे–छोटे गांवो के ग्रामीणों

ने आम जनता की राजनीति का पाठ उन्हें पढ़ाया है, और यह दिखा दिया है कि ये राजनैतिक दल भले ही अपनी राह से भटक जायें पर प्रकृति की गोद में बसे आदिवासी कभी नहीं भटकेंगे।

जंगल और ज़मींन पर सामूहिक दख़ल अपनी राजनैतिक जगह पर दख़ल

दरमा के संघर्ष ने यहां एक तीखी राजनैतिक प्रक्रिया की शुरुआत कर दी, यहां तक कि यहां की महिलाओं की चेतना ने माओवादी गुटों के फैलाव को भी पीछे धकेल दिया। यह एक ऐसा गांव था जहां माओवादी लीडर ने वहां के नेता बुद्धिनारायण और महिलाओं को माओवादी गुट में शामिल होने के लिये आमंत्रित किया। जिसको वहां की महिलाओं और नौजवानों ने नकार

दिया और उन्हें जवाब दिया कि वह अपने संघर्ष को जनवादी तरीके से ही लड़ेंगे। इस तरह से यहां की महिलाओं का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंनें अपने संघर्षो का रास्ता जनवादी तरीके से चुना क्योंकि वह सब कुछ अपने हाथ में रखना चाहती थीं और अपनी ताकत से ही आगे बढ़ना चाहती थीं। उन्होंने अपने अन्दर से ही नेतृत्व को उभारा और राजनैतिक पार्टियों सहित सभी अन्य नेतृत्वों को नकार दिया। हमने यह आभास किया कि महिलाओं एवं ग़रीब तबकों में एक सामूहिक राजनैतिक चेतना का संचार हो रहा है, जिससे हमारी राजनैतिक चेतना का भी विकास होने लगा। हम लोग भी उसी आधार पर संगठन को तमाम हमलों से बचाने की कोशिशों में अपनी ताकत लगाने लगे।

दरमा की महिलाओं के इस संघर्ष ने अन्य पड़ोसी जनपदों जैसे चन्दौली और मिर्जापुर की महिलाओं को भी आन्दोलित करना शुरु कर दिया। जिसमें सबसे उल्लेखनीय है जनपद चन्दौली की महिलाओं का संगठन में बड़े पैमाने पर जुड़ना। चन्दौली के नौगढ़ ब्लाक में यह महिलाऐं जोकि मांयें भी थीं, अपने बच्चों को पुलिसिया आतंक से बचाने के लिये दर–दर भटक रही थीं। इनके नौजवान बच्चों को नक्सली होने के आरोप में विभिन्न झूठे केस लगा कर जेल में डाल दिया गया था। अपने बच्चों को छुड़ाने के लिये इन मांओं ने अपने खोये हुये अधिकारों को लेकर लोगों को जोड़ना शुरु किया जिसमें अहम था, उनके जंगल और जमीन पर अधिकार और सामंती उत्पीड़न को समाप्त करना। क्योंकि उनके बच्चों को पुलिस में नाम देने वाले यही सामंती तबके के लोग थे जो कि अब इन्हें नक्सली बना इनका उत्पीड़न कर रहे थे। भूमि और जंगल के अधिकारों के लिये जब महिलायें संगठित होने लगी तो सबसे पहली गहरी चोट वहां के सामंती तबके के लोगों को लगी और उन्होंने हर तरह से इस संगठन को तोड़ने के लिये भरसक प्रयास किये। परन्तु सन् 2005 में ग्राम भुलही, तहसील नौगढ़ में महिलाओं ने लगभग 500 एकड़ भूमि पर कब्जा कर लिया और उसपर जोत कोड़ करने लगीं। इस भूमि पर कब्जा पाने के लिये महिलाओं ने धरना देना शुरु कर दिया

और इस तरह से शासन प्रशासन को अपनी मांग के प्रति अवगत कराया।

दलित आदिवासी महिलाओं द्वारा भूमि पाने की सफलता चारों ओर आग की तरह फैल गई तथा प्रशासन, मीडिया और अन्य सामंती तबके इस बात को पचा नहीं पा रहे थे। लेकिन वहीं वे इस बात के लिये इन महिलाओं की सराहना भी करते थे कि वे अपनी बात को स्वयं कहने के लिये अधिकारियों के दफ्तर, पुलिस थाने, अखबारों के आफिस आदि में सामूहिक रुप से जाने लगीं। महिलाओं की यह हलचल पूरे क्षेत्र में एक चर्चा का विषय बन गयी। महिला शक्ति के इस उभार ने क्षेत्र में माओवाद के बढ़ते कदमों को पीछे धकेल दिया। जनपद सोनभद्र में तैनात पूर्व पुलिस

थीं, ने कई गांवों में ग्राम समाज की बंजर या फिर आबंटित भूमि के लिये संघर्ष किये और जिला प्रशासन को हिला दिया। इनमें प्रमुख तौर पर अकछोर, औड़था, महुआंव गौसाई, मोकरम, पिथौरी, मझगाई, पुसौली, चन्दुली, पसई कलां, देवरा राजा, बघई आदि अनेकों गांव हैं, जहां महिलाओं ने महज 1 या 2 बीघा जमीन का संघर्ष सामूहिक तौर पर लड़ा और जीत भी हासिल की। चूंकि इस इलाके में मानवाधिकार हनन के मामले अपनें चरम पर थे, इसलिये हमने 'मानवाधिकार कानूनी सलाह केन्द्र' को कचहरी में खोला। थोड़े ही दिनों में यह महिलायें मानवाधिकार वाली के नाम से जानी जाने लगीं। उन्हें गांव में यह कहा जाता था कि 'यह महिलायें मानवाधिकार वाली नहीं बल्कि मन–मनवाधिकार की महिलायें हैं, जो अपनी बात मनवा कर ही मानती हैं'।

कप्तान रघुबीर लाल प्रायः ही इन महिलाओं से जो उनके पास कोई भी शिकायत ले कर जाती थीं तो कहते थे कि 'आप लोग बिहार और झारखण्ड बार्डर पर भी अपना संगठन बनायें। महिलाओं का अब यह आलम बन गया था कि वे एक इंच भी ग्राम सभा की भूमि को पाने के लिये सामूहिक तौर पर लामबंद हो जाती थीं। आदिवासियों की अपेक्षा दलित महिलायें जो गांव के अंदर थीं, और जो कि पूर्ण रुप से भूमिहीन

एक गांव से दूसरे गांव और दूसरे गांव से तीसरे गांव ऐसे ही यहां की महिलायें इस क्षेत्र में महिलाओं को जोड़ती चली गईं। जनपद सोनभद्र में तीन तहसीलें हैं – राबर्ट्सगंज, घोरावल और दुद्धि। इन तीनों तहसीलों में इस संगठन का फैलाव तेज़ी से महज छह सालों में ही हो गया और जंगल और ज़मीन के अधिकार का संघर्ष और भी तेज़ होता चला गया। इसी बीच सन् 2006 में 'अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परम्परागत

वननिवासी (वनाधिकारों को मान्यता) कानून–2006' केन्द्र सरकार द्वारा पारित किया गया। जिसके लिये पूरे देश में जनसंगठनों द्वारा कई वर्षो से संघर्ष किया जा रहा था। इस कानून को लागू करने में हमारे संगठन 'राष्ट्रीय वनजन श्रमजीवी मंच' ने सक्रिय रूप से एक बहुत ही अहम् भूमिका निभाई। इस कानून के तहत नये सिरे से इस पूरे इलाके में जनचेतना अभियान शूरु किया गया और अपनी मंजिल करीब देख और भूमि पाने का सपना पूरा होते देख कानून को जल्द से जल्द लागू कराने के लिये दबाव बनाना शुरु किया। इस कानून को लागू करने में केन्द्र सरकार द्वारा एक वर्ष से अधिक का समय लगा दिया।

कानून से भूमि मिले या न मिले महिलाओं की शक्ति ने एक जबरदस्त आशा की किरण इस इलाके में पैदा कर दी थी। दरमा की महिलाओं द्वारा पुलिस से मोर्चा लेने की मिसाल दूर–दूर तक फैल चुकी थी। यहां

तक कि माओवादी गुट भी इस शक्ति के आगे झुक गये थे। फिर तो क्या था दूर दराज से महिलायें और पुरुष आते और कहते कि उनकी पुश्तैनी भूमि जो छीन ली गयी थी, वे फिर उस पर काबिज़ होना चाहते हैं। दरमा से करीब 60 किमी दूर रामगढ़ कोन में दलित आदिवासियों ने 250 एकड़ वनविभाग के कब्जे वाली भूमि पर झंडा और बैनर के साथ जा कर धरना शुरु कर दिया। इस पर भी बहुत हंगामा हुआ, मार पीट हुई और केस लगाये गये। इस गांव के मस्ले पर आखिर हार कर प्रशासन को वार्ता में आना पड़ा। यह भी पहली बार हुआ कि वार्ता का स्थान भी आंदोलन कारी महिलाओं के कहने पर थाना कोन ही तय किया गया, जहां आये दिन दलित आदिवासियों को तरह–तरह की यातनाऐं दी जाती थीं। यह वार्ता पुलिस कप्तान रघुबीर लाल की पहल पर हुई और करीब 500 महिला पुरुषों ने थाना कोन में हुई इस खुली बैठक में जिले के आला अफसरों से अपनी प्रमुख मांगों को मनवाया और अपने धरने को जारी रखने, मारपीट में हुए नुकसान की भरपाई और धरना स्थल पर सभी आंदोलनकारी महिलाओं के बैठने के लिये एक झोपड़ी के निर्माण की मांगों को भी मनवा लिया। यह भी एक ऐतिहासिक घटना थी। इस इलाके में दलित आदिवासियों नें थाने के वर्चस्व को चुनौती दी थी। उत्तर प्रदेश और बिहार के कई दूर–दराज के इलाकों में आज भी थाना ही सरकार है।

सन् 2006 से 2007 में ऐसी स्थिति बन गई कि पूरा जनपद यहां तक कि चन्दौली, मिर्जापुर और पास के ही पड़ोसी राज्य झारखंड में भी कई जगहों पर महिलाओं के नेतृत्व में कहीं ग्राम सभा तो कहीं वनभूमि पर छोटे–बड़े आंदोलन धरने के रुप में शुरु हो गये। पूरे इलाके के सामंती तबके महिलाओं की इस बढ़ती हुई जागृति से भयभीत होने लगे और प्रशासन तथा पुलिस के साथ इस बात को मानने लगे कि इस के पीछे माओवादियों का हाथ है तथा यह संगठन दो चेहरे रखे हुए है। कहीं न कहीं संगठन का जुड़ाव माओवादी संगठनों के साथ जरूर है। गांवों में दलित महिलाओं

द्वारा और जंगलों में आदिवासी महिलाओं द्वारा भूमि को लेकर जगह जगह आन्दोलन चलने लगे। प्रशासन के लिये यह आन्दोलन एक सिरदर्द बन गया। मई 2007 में राज्य में उत्तर प्रदेश में विधान सभा चुनावों के बाद प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी की सरकार बनी और नये अफसरों ने कमान संभाली।

वनविभाग एवं सामंती ताकतों द्वारा इस पूरे आंदोलन का जबरदस्त भ्रामक प्रचार किया। यह संगठन भूमि पर अवैध कब्ज़े कराने वाला संगठन है तथा इसके लोग वनविभाग और भूमिधरी भूमि पर व दूसरों की खतौनी वाली जमीनों पर कब्ज़ा जमा रहे हैं। प्रशासन ने इस समस्या को गंभीरता से लेने के बजाय इसे कानून और व्यवस्था का मामला बना दिया। इसी समय इस जनपद में एक जबरदस्त धमाका हुआ, जिसमें आम ग़रीब जनता द्वारा महिलाओं के नेतृत्व में ऐसा आंदोलन लड़ा गया जो कि यहां की एक ऐतिहासिक घटना साबित हुई। तहसील दुद्धि के कोदवनीयां, झीरगाडंडी, सतद्वारी, बोम, जोरुखाड़, परासपानी आदि गांवों के आदिवासीयों ने हजारों एकड़ भूमि पर दख़ल कायम कर लिया, क्योंकि वनाधिकार कानून कहीं भी लागू नहीं हो रहा था। इनमें से कोदवनीयां, सतद्वारी और झीरगाडंडी गांवों ने जिस तरह से वनभूमि पर अपना दख़ल कायम किया था, उसने प्रशासन की नींद उड़ा कर रख दी थी। जब इन गांवों के तमाम बुनियादी अधिकारों को छीनने वाली पुलिस द्वारा राशन कार्डों को जलाना, इनके बच्चों के स्कूल से नाम कटवाना, बारात में आये बारातियों को मारना पीटना और शादी के लिये लाये जा रहे गल्ले को लूटना आदि जैसी गंभीर घटनाओं को अंजाम देना शुरू किया, तो यह ऐलान किया गया कि प्रशासन सबको सामूहिक रुप से गिरफ्तार किया जाये। तब संगठन ने एक निर्णायक लड़ाई लड़ने का फैसला

लिया और **'जो ज़मीन सरकारी है–वो ज़मीन हमारी है'** के नारे के साथ आंदोलन की शुरुआत कर दी।

1 अगस्त 2007 को कैमूर क्षेत्र महिला मज़दूर किसान संघर्ष समिति ने यह ऐलान किया कि अब सामूहिक तौर पर हम अपनी भूमि के अधिकार लेने के लिये चिन्हित की गयी भूमि पर दख़ल करेंगे। बोम, जोरुखाड़, औड़त्था, ओहरावा, चन्दुली, चरगड़ा और जाने कितने गांवों ने अलग–अलग तहसीलों और थानों के अंतर्गत आने वाली भूमि पर दख़ल कर लिया। जिसमें 3 अगस्त 2008 को संगठन के तीन महिला साथी और एक पुरुष साथी को कई फर्जी मुकदमों के तहत जेल में डाल दिया गया। मुझ पर एक सप्ताह के अन्दर रासुका लगाने की कार्यवाही की गयी। इस आंदोलन

में हर थाने से मुझ पर व मेरे साथियों पर और इसके अलावा 3000 दलित आदिवासियों पर वनविभाग और पुलिस विभाग ने झूठे मुकदमें क़ायम किये। लेकिन तब भी महिलाओं और दलित, आदिवासियों ने अपने संघर्षों को नहीं छोड़ा और इस गिरफ्तारी और फर्जी मुकदमों के विरुद्ध अपना संघर्ष और तेज कर दिया। इसी आंदोलन के कारण मुझ पर लगाई रासुका की कार्यवाही को एक सप्ताह के अन्दर ही वापिस लिया गया और जेल से जल्दी ही रिहा करने के निर्देश ज़ारी किये गये। इस आंदोलन में देश के प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ता मेधा पाटकर, कल्याणी मेनन, गौतम मोदी, अशोक चौधरी और जाने कितने अन्य सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्ता इस आंदोलन के समर्थन में साथ आ गये। इस तरह से सभी साथियों को एक महीने के बाद रिहा कर दिया गया। इस आंदोलन में लगभग 3000 आदिवासियों पर फर्जी मुकदमें लादे गये, जिनमें से 80 फीसदी मुकदमे महिलाओं पर दर्ज हैं, जो कि आज भी उन पर लदे हुए हैं। लेकिन आंदोलन और संगठन की मजबूत ताकत की वजह से पुलिस और जिला प्रशासन इन्हें गिरफतार करने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे हैं।

महिलाओं ने दिया सामूहिकता का संदेष

एक ख़ास बात इस आंदोलन से निकल कर आयी, जो कि समाज में काम कर रहे सामाजिक कार्यकर्त्ताओं व अकादमिक संस्थानों के लिये एक तरह की सीख है– वो है सामूहिकता का पाठ।

इसमें तो कोई दो राय नहीं थी कि भूमि के इस आंदोलन और उसमें महिलाओं के जुड़ाव में तीखापन तो पैदा किया ही, प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण करने का नज़रिया भी दिया। इस आंदोलन में बंधुआ मजदूर, खेतीहर मज़दूर, लघु व सीमांत किसानों के घरों की महिलाओं का जुड़ाव हुआ था। इसलिये ये महिलायें भूमि को निजी मिल्कियत और सम्पत्ति के रूप में बिल्कुल नहीं देख रही थीं। बल्कि 'इस संसाधन को जीविका के साधन' के रूप में देख रही थीं। यह दृष्टिकोण महिला एवं भू–अधिकारों में मौजूदा वक्त में चल रही बहस से बिल्कुल परे है। भूमि को सम्पत्ति के रूप के ठीक विपरीत इन महिलाओं के लिये भूमि जीविकोपार्जन का एक महत्वपूर्ण साधन है। जोकि उनकी भविष्य की खाद्य सुरक्षा है व सामाजिक सुरक्षा है। इस आंदोलन ने एक और महत्वपूर्ण बात यह सिखाई कि ग़रीब, भूमिहीन महिलाओं की भूमि के रूप में भविष्य निधि तभी सुरक्षित रह सकती है, जब तक यह भूमि सामूहिक मिल्कियत में रहेगी। इस तरह से महिलाओं ने दख़ल की हुई भूमि को सामूहिक मिल्कियत में रखने का फैसला किया। एक दूसरी महत्वपूर्ण बहस यह भी हुई कि यह भूमि किस के नाम से हो। समुदायों के पुरूषों को अन्दर ही अन्दर यह लालच था कि कहीं न कहीं भूमि उनके नाम हो जाये। इस तरह से हमने देखा कि फिर महिलायें पीछे रह जायेंगी। चूंकि अभी भी महिलाओं के नाम भूमि को दर्ज

करने के लिये पुरूष समाज, अफसर, सरकारी तंत्र व सरकार तक खुद तैयार नहीं है।

दख़ल की हुई भूमि की मिल्कियत के लिये काफी बहस और चर्चायें हुई। तब संगठनात्मक रूप से हमने भी तय किया कि हम लोग वहीं आंदोलन को समर्थन देंगे, जहां पर लोग भूमि को सामूहिकता में रखेंगे और सामूहिक रूप से अनाज पैदा करेंगे। चूंकि भूमि आंदोलन में काफी दमन सहना पड़ता था और पुलिस का डर रहता था। इसलिये भी समुदायों को ऐसे संगठन की जरूरत थी जो उनको जिला और राज्य स्तर पर संरक्षण प्रदान कर सके। दो शर्तो पर हमने संरक्षण देना तय किया, एक तो भूमि को सामूहिक मिल्कियत में रखना और दूसरे आंदोलन के तहत दख़ल और जीती हुई भूमि महिलाओं के नियंत्रण में रहेगी। इसी शर्त पर आंदोलन लड़ने की तैयारी हुई और हर जगह जीत सामूहिकता की हुई। इस सामूहिकता के संघर्ष ने ही हमें यह सिखाया कि समुदाय जब अपनी लड़ाई में कामयाब हो जाते हैं तो तरह–तरह के दलाल और दूसरे लोग उनके बीच आकर संगठन तोड़ने की और बहकाने की कोशिश करते है। कहीं दलित–आदिवासी या अन्य जातिगत तनाव खड़ा करते तो कहीं वनविभाग, पुलिस व प्रशासन के लोग इलाके के प्रभावशाली जातियों को इनके खिलाफ खड़ा करते है। पर जहां–जहां संगठन की ताकत मजबूत रही, वहां–वहां महिलाओं ने कड़ा जवाब दिया और अपनी भूमि पर कायम रही। इन प्रभावशाली ताकतों ने जब देखा कि पुलिस भी इन महिलाओं को काबू में नहीं कर पा रही है, तब उन्होंने अपने समुदाय की महिलाओं को आंदोलनरत महिलाओं के सामने खड़ा किया और जातिगत तनाव बढ़ाने की कोशिश की। परन्तु दबंगों की यह चाल भी दलित आदिवासी महिलाओं के सामने कामयाब नहीं हो पायी और उनकी महिलाओं को मुंह की खा कर वापिस हटना पड़ा। यहां तक कि कई जगहों पर इन महिलाओं को दलित आदिवासी महिलाओं से माफी तक मांगनी पड़ी ताकि उनके ऊपर कोई कानूनी कार्यवाही न हो।

दख़ल की गई भूमि पर अभी भी लगातार चर्चायें जारी हैं कि इन भूमियों को भविष्य के लिये किस तरह से संजोकर रखा जाये। यह बात तो साफ सामने आ रही है व महिलाओं ने भी कहा कि सामूहिक मिल्कियत में रहने से ही महिलाओं का नियंत्रण रहेगा व महिलाओं का समाज में एक विशेष एवं सम्मानजनक दर्ज़ा भी रहेगा अन्यथा नहीं। अब इन जमीनों को महिला समितियां बना कर उनकी देख रेख में देने की प्रक्रिया पर भी चर्चा हो रही हैं।

सामूहिकता की उपज और विकास के कार्य

इस सामूहिक दख़ल के बेहद ही सकारात्मक नतीजे सामने आये हैं जिन्हे देख कर विश्वास होता हैं कि प्राकृतिक संसाधनों का नियंत्रण और बचाव वही लोग कर सकते हैं जो उनपर निर्भर हैं। जैसे ही इन वंचित समुदायों और महिलाओं के नियंत्रण में भूमि आई उन्होंने सूखा होने के बावजूद भी ऐसी खेती की जिसमें

कम पानी की मात्रा इस्तेमाल होती है और अपने आप को भुखमरी से बचाया।

हमें बहुत ताज्जुब हुआ कि जनपद सोनभद्र में पिछले 5 वर्षो से लगातार सूखा पड़ रहा हैं परन्तु उसके बावजूद भी भूमि आंदोलन से मिली भूमि पर दलित आदिवासीयों ने कई जगह पर अरहर की खेती कर अपने आंदोलन में खर्च को भी वहन किया और दाल की पैदावार कर सभी परिवारों में इस उपज को बांटा। इस संदर्भ में कई गांवों में बहुत ही महत्वपूर्ण अनुभव हुये, जिनका संक्षिप्त में हम यहां उल्लेख कर रहे हैं।

ग्राम दरमा : यह गांव जैसा कि हमने पहले भी लिखा इस पूरे इलाके का जैसे गुरू बन गया और यहां की महिलाओं ने इस पूरी इलाके की भूमि पर कैसे आंदोलन किया जाये उसकी ट्रेनिंग दी। इस गांव ने सन् 2004 में 500 एकड़ भूमि पर दखल किया था, भूमि उबड़ खाबड़ और टीलानुमां थी। ऐसी ही भूमि पर 250 परिवारों ने मिलजुल कर खेती की। पहले वर्ष एक साथ सामूहिक रूप से 100 हल चलाये गये, सभी मर्द, महिलाओं और बच्चों ने उस बंजर पड़ी भूमि को अपनी मेहनत से जोत डाला और कहीं अरहर, तो कहीं मसूर की दाल को छिड़क दिया। महिलाओं ने बयान दिया कि अगर हमारे पास इतनी भूमि है, तो हम दूसरों के खेतों पर गुलामी करने क्यों जायेंगे। हम अपने ही खेतों पर ज्यादा काम करेंगे। पहले ही वर्ष सूखा होने के बावजूद 96 क्विंटल अरहर की दाल की पैदावार हुई। इस पैदावार में कुछ हिस्सा आंदोलन के दौरान रहे खर्चे के लिये व्यय किया गया। कुछ हिस्सा कार्यालय पर दिया गया ताकि कार्यालय पर इलाके से जाने वाले आदिवासियों के लिये पर्याप्त भोजन रहे। बाकी हिस्सा सभी परिवारों के बीच बांटा गया। इस प्रयास ने लोगों

के अंदर एक ग़जब का आत्मविश्वास पैदा कर दिया। इसी तरह दूसरे और तीसरे वर्ष भी कड़ी मेहनत से मौसम की मार झेलते हुए भी दालों की किस्में तैयार कीं और सबसे पहले भुखमरी पर काबू किया। वहां के आदिवासी नेता बुद्धिनारायण का मानना था कि 'हमारी पैदावार से हम कुछ पैसा भी इकट्ठा करना चाहते हैं और सबसे पहले हम अपने बच्चों के लिये स्कूल की वर्दी बनाना चाहते हैं'। इस पैदावार से यह समुदाय अपने विकास के लिये स्वतः ही सोचने लगा और शासन व प्रशासन को यह संदेश दिया कि वे किसी के मातहत नहीं है। अगर उत्पादन के साधन उनके अपने हों तो वे अपना विकास करना जानते हैं। यहीं नहीं सूखे की स्थिति उनको एक और चुनौती दिये हुई थी इसके लिये यह योजना बनाई गई कि पानी को बचाने

के लिये छोटे–छोटे चेक डैम बनाये जायें और यह काम भी जल्द ही कर लिया गया। इन छोटे–छोटे चेक डैम से अब निचले इलाकों में धान की भी खेती होने लगी। इतना ही नहीं इस वर्ष पूरे समुदाय के लोगों ने चंदा लगा कर एक ट्रेक्टर भी खरीद लिया है, जिसके माध्यम से इस वर्ष खेती की और भी अधिक पैदावार होने की उम्मीद है।

ग्राम रामगढ़ कोन

यहां की महिलाओं ने भी लगभग 500 बीघा भूमि पर दख़ल किया। यह दखल कई गांवों के लोगों ने मिलकर किया। इस भूमि पर भी सामूहिक रुप से लगभग 20 क्विंटल अरहर की दाल, 50 क्विंटल तिल और उसी तरह मक्का, मसूर आदि की पैदावार की गई। इस गांव में कई तरह की दिक्कतें महिलाओं को झेलनी पड़ी। यहां पर संगठन के अन्दर भी कुछ अन्दरुनी दिक्कतें थीं। आपसी मनमुटाव और दलित आदिवासियों के तनाव जिसका फायदा बाहरी लोगों ने उठाया। यहां की महिला नेता लालती देवी व उनके पति को पुलिस एवं वनविभाग द्वारा तरह तरह की यातनायें दी गई, इनके ऊपर सैकड़ों झूठे मुकदमें लादे गये व शामलाल को तो गुडा एक्ट लगा जिला बदर तक कर दिया गया। सन् 2007 के ''जो ज़मीन सरकारी है वो ज़मीन हमारी है,'' आंदोलन में ये दोनों पति–पत्नि भी जेल में हमारे साथ जेल में निरुद्ध थे। जेल से जीत कर रिहा होने के बाद पुलिस और वनविभाग ने हमला करना नहीं छोड़ा। वहां के स्थानीय यादव समुदाय के लोगों को दलित आदिवासियों के खिलाफ भड़काया गया। यहां पर पिछले वर्ष से खेती की शुरुआत की गई परन्तु जब भी यहां के महिला पुरुष खेती करते तो उनकी खेती यादव समुदाय द्वारा चरवा दी जाती। ऐसी परिस्थिति का मुकाबला करते–करते आज यहां का संगठन वनाधिकार कानून के चलते अपनी जगह बना पाया। संगठन के अन्दर जो वाद–विवाद था, उसे भी संगठन द्वारा काफी गंभीरता से लिया गया और उस विवाद को निपटाने के लिये अन्य गांवों के संगठनों ने 40 सदस्यीय टीम का गठन किया और एक दिन पंचायत कर रामगढ़ कोन के संगठन के अंदरुनी मनमुटाव को ठीक किया गया।

ग्राम कोदवनीयां

इस गांव ने जो मिसाल क़ायम की वो शायद अभी विरले ही देखने को मिलता है। इस गांव ने सन् 2007 में पुलिस, दबंग व वनविभाग का वो हमला झेला जिसके बारे में कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। लेकिन आदिवासियों की फौज जिसका अग्रणी दस्ता महिलाओं और बच्चों का था, ने ना सिर्फ पुलिस को नाकों चने चबवा दिये बल्कि उनके इस दावे को ''कि कोदवनीयां गांव के लोग नक्सली हैं'' को भी खोखला साबित किया। इस गांव के महिला एवं पुरुषों ने लगभग 2000 एकड़ भूमि पर अपना दख़ल क़ायम किया है। इस गांव के मेहनतकश लोगों ने सबसे पहले 3 बंधियां बनाई जिससे कि उनको पानी उपलब्ध रहे। यह बंधियां उन रास्तों पर बनाई जिन रास्तों से

पुलिस और वनविभाग की फोर्स उनको लगातार आ कर परेशान करती थी। खेती में उन्होंने अरहर, तिल, कोदो, मिझरी, मसूर, मक्का, चना, गेहुं आदि बोया। उनकी सबसे अच्छी खेती तिल की हुई, जिसे उन्होंने स्टाक करके रख दिया है और समय समय जब भी उनको कोर्ट कचहरी के काम या फिर संगठन के काम से कहीं भी जाना पड़ता है वहां तिल बेच कर अपने धन की आपूर्ति करते हैं। यहां के लगभग 300 आदिवासियों और इसके अलावा सैंकड़ों महिलाओं व पुरूषों पर झूठे केस लदे हैं, जिनकी पैरवी करने के लिये इन्हें हाई कोर्ट तक भागना पड़ता है।

पुलिस व वनविभाग को जो सबक इस गांव ने सिखाया वो इस पूरे इलाके के लिये एक मिसाल बन गया था। यहां कि महिलाओं ने उनके सभी रास्ते बंद कर अपने संगठन के लोगों के लिये एक अलग रास्ता तैयार किया। यह 5 कि.मी का रास्ता महिलाओं ने पहाड़ी रास्तों को काट कर तीन दिन के अन्दर तैयार किया और एक बोर्ड गाड़ दिया कि ''इस रास्ते से पुलिस और वनविभाग का आना जाना वर्जित है''। यह रास्ता संगठन के सम्मेलन के लिये बनाया गया। उन्होंने कहा कि ''अगर जिलाधिकारी हमसे सम्मानजनक तरीके से बात करने आयेंगे तो हम उनको इस रास्ते पर चलने

देंगे और संगठन का कार्यक्रम ख़त्म हो जाने के बाद इस रास्ते को काट देंगे''। यह बात यहां के दलित आदिवासियों ने साबित कर दी कि उनके लिये विकास कैसा होना चाहिये इसे वह स्वयं तय करेंगे और निर्माण भी करेंगे।

ग्राम बोम, जोरुखाड़, सतद्वारी, झिरगाडंडी, परासपानी, धूमा, हरनाकछार

इसी तरह से इन गांवो की भी स्थिति रही। एक दूसरे से हिम्मत जुटाते हुए इन सभी गांवो ने अपनी अपनी भूमि पहचाननी शुरु की और सन् 2007 में बोम ने 250 एकड़, सतद्वारी ने 500 एकड़, झिरगाडंड़ी ने 250 एकड़, सन् 2008 में परासपानी ने 600 एकड़ और धूमा ने 250 एकड़ जमीन पर अपना दख़ल कायम किया और महिलाओं ने ग़जब का साहस दिखाया। इन सभी दख़ल की हुई जमीनों को यह महिलायें ''धरना'' कहती हैं। क्योंकि दख़ल को सबसे पहले अपने संगठन के झंड़ा और बैनर के साथ महिलाओ द्वारा किया जाता है और वहां पर सामूहिक रुप से एक झोपड़ी डाल दी जाती है, जहां पर धरना दिया जाता है। सभी धरनों पर पुलिस और वनविभाग से तीखी झड़पे हुईं। यहां तक कि अगस्त 2008 में जोरुखाड़ में धरने पर बनाई गई अगरिया जाति के लोगों की 300 से ऊपर झोपड़ियों को वनविभाग ने यादव समुदायों को उकसा कर जला कर राख कर डाला और उनकी बोई हुई मक्का और अरहर की खेती को भी खाक कर दिया। दो दिन वहां की महिलाओं और बच्चों ने खुले में जंगल में छुप कर भूखे पेट अपनी जान बचाई। इसके बाद संगठन के माध्यम से कार्यवाही हुई और यादव समुदायों के लोगों पर एससीएसटी एक्ट के तहत कार्यवाही हुई जिसमें उनके 8 लोगों को जेल जाना पड़ा। उसके बाद उस

पूरे इलाके के यादव समुदायों को एक अच्छा सबक मिल गया और उन्होंने दलित आदिवासियों के भूमि आंदोलन में दख़ल देना बंद कर दिया।

इस हार से पुलिस और वनविभाग काफी बौखलाये हुये थे। उन्होंने अपनी हार का बदला ग्राम हरना कछार में लिया, जहां पर महिलाओं की सीधी–सीधी झड़प महिलाओं के साथ हुई। जब महिलायें अपने हक को लेने के लिये आंदोलन कर रही थीं। यहां पुलिस ने महिलाओं को नंगा कर पीटा, इस घटना पर अंत में एक लेख अलग से भी दे रहे हैं। महिलाओं ने इस हादसे के बाद ईट का जवाब पत्थर से दिया और प्रशासन की चूलें हिला दीं।

ग्राम परास पानी की महिलाओं ने अपनी दख़ल की हुई भूमि में नया गांव बसाया और उसका नाम ''कोयल नगर'' रखा। यहां भी महिलाओं ने पुलिस फोर्स से ऐसे जवाब तलब किये जिसको सुन पुलिस वहां से भाग

खड़ी हुई। लगभग 150 की संख्या में पुलिस फोर्स, वनविभाग, ग्राम प्रधान धूमा, महिला पुलिस, एसडीएम और डीएफओ वहां पहुंचे। इन्होंने लोगों को जुताई करने से रोका और वहां से हटने को कहा। वहां की महिला नेता हेमलता ने बड़ी मुस्तैदी के साथ जवाब दिया और पूछा कि आप **किस के आर्डर से यहां आये हैं, कौन आफिसर आपको यहां भेजने का आर्डर दिये है हमें उनका साईन दिखाइये, हमें वो कागज़ दिखायें और क्या आदेश ले कर आये हैं।** इस पर पुलिस इन्स्पेक्टर ने जब महिलाओं से पूछा कि वे किस के आर्डर से भूमि पर कब्जा कर रहे हैं, जो कि वनविभाग की भूमि है। महिलाओं ने कहा कि यह भूमि उनके पुरखों की है और उन्होंने वनाधिकार कानून की कापी का आर्डर दिखा दिया। उसके साथ ही खतौनी और नक्शा का कागज़ भी दिखाया। डराने धमकाने की बात की तो महिलाओं ने चेतावनी दी कि महिलाओं को हाथ लगाया तो इसका मुह तोड़ जवाब दिया जायेगा। एसडीएम ने कहा कि आप लोग किस के आर्डर से बैठे है तब हेमलता ने बताया कि हमारे पास ये कागज हैं जो कि हमें भारत सरकार और राज्य सरकार ने दिया है वनाधिकार कानून के रूप में। उन्होंने कहा कि यह कागज तो झूठा है कोई भी तुम्हें दे सकता है। तब हेमलता ने कहा कि अगर ये काग़ज झूठा है तो आप हमसे क्यों समझने आये हैं संसद में जाइये, प्रधान मंत्री और मुख्य मंत्री से पूछे और तब हमें भी आकर बताये कि यह कागज झूठा है या सच्चा। हेमलता और हरिशंकर ने बिना डरे बड़े आत्मविश्वास से सभी सवाल जवाब किये और कानून को लागू करने की बात कही। उस समय वहां के आदिवासी भूमि को जोत कर फसल उगाने में लगे हुये थे। पुलिस ने जब उनसे उनके फावड़ा, कुदाल आदि को फेंकने को कहा तब हेमलता ने कहा कि पहले आप अपने हथियार फेंके तभी हम अपने औज़ार फेंकेंगे। हेमलता ने ये भी कहा कि पहले अपना डंडा फेंकिये, तभी हम भी अपने औज़ार रखेंगे। आदिवासियों से यह भी कहा गया कि तुम दूसरों की भूमि पर अपना हक जमाओगे। इस पर

उन्होंने जवाब दिया कि हम लोग अपनी भूमि पर दख़ल लेने आये हैं, जो हमारे बाप दादा की है, ये किसी की नहीं है, यह आदिवासीयों की भूमि है, जिसे हम कभी भी नहीं छोड़ेंगे। महिलाओं ने कहा कि आप लोग दबंगो द्वारा कबजाई हुई जमीन क्यों नहीं छुड़वाते है, वहां इतनी फोर्स क्यों नहीं ले जाते हैं। उनका कब्ज़ा छुड़वा देंगे तो हम भी ज़मीन छोड़ देंगे।

बीच में अधिकारी लोग फोन पर बात करने लगे तो हेमलता ने टोका कि आप लोग क्यों फोन से बात कर रहे हैं, हम लोग भी फोन से बात करना जानते हैं, पर आप लोग हमें मौका ही नहीं दे रहे हैं। तब अधिकारियों ने पूछा कि आप लोग किस से बात करेंगे, तो हेमलता ने कहा कि हम डीएम से बात करेंगे और पूछेंगे कि किस के आर्डर से यहां पर फोर्स हम लोगों से बात करने आई है। इस बात को सुनते ही अधिकारियों के सारे तेवर ढीले हो गये और वे लोग यह कह कर वापस हो गये कि ठीक है आप लोग 4 अगस्त 2008 को डीएम कार्यालय पर पहुंचें और डीएम से इस विषय पर बात कर लें।

भूमि के संघर्ष से आयी इस चेतना का असर महिलाओं पर काफी असरदार तरीके से दिखाई दे रहा है। भूमि व जंगल पर अपना दख़ल कायम करने के साथ वहां उपजाई खेती से सबसे पहले इन सभी समूहों ने एक मोबाईल फोन खरीदा, जिससे वह अब लगातार संगठन के साथियों, प्रशासन एवं अधिकारियों के साथ सीधे संपर्क में हैं। यही नहीं भूमि के आंदोलन ने उनमें अन्य विकास सम्बन्धी जो कार्य चल रहे हैं, उसमें हो रही अनियमितता के बारे में भी सजग बनाया। मायावती सरकार के सत्तासीन होते ही रोज़गार गारंटी कानून के तहत मज़दूरी 60रु से बढ़ा कर 100रु कर दी गई है। अब महिलाओं में इतनी सजगता है, कि वे हर जगह काम की मांग कर रही हैं व समय से पैसा ले रही हैं और 100रु का भुगतान हासिल कर रही हैं। हालांकि जहां जहां संगठन नहीं है, वहां अभी भी भ्रष्ट अधिकारियों और ठेकेदारों की चल रही है। इसी तरह से महिलाओं द्वारा खुद अधिकारियों के पास जा कर भूमि पट्टा के आबंटन व अन्य रोज़गार लेने के लिये स्वयं जा कर अपने लिये व अपने समुदाय के लिये काम कर रही हैं।

आंदोलित महिलायें और उनके परिवार के अंदर संघर्ष

जब भी महिलाओं के संघर्षो की बात सामने आती है तो उनके पारिवारिक जीवन पर क्या असर पड़ रहा है व उनके निजी जिन्दगी में क्या बदलाव आ रहे हैं, इसकी बात भी यहां करना बहुत जरुरी है। इस क्षेत्र के भूमि आंदोलन ने समाज में वर्गों में अपना असर छोड़ा और एक critical intervention किया है, चाहे वो आम मध्यम वर्ग, अधिवक्ता समुदाय, प्रशासन, बुद्धि जीवी तबका, मीडिया, न्यायालीन व्यवस्था, उच्च जाति एवं उच्च वर्ग, औद्योगिक समुदाय, राजनैतिक पार्टियां, ट्रेड यूनियनें, स्वयं सेवी संगठन एवं आम जनमानस हो सब के बीच महिलाओं के इन संघर्षों की चर्चा प्रमुखता के साथ हो रही है। जब यह सब वर्ग इस आंदोलन

से अपनी सोच बदलने पर मजबूर हो रहे हैं तो परिवार के अंदर इसके असर का होना भी लाज़मी है। ये सभी संघर्षरत महिलायें ऐसे तबके से जुड़ी हुई हैं, जिनके पास सम्पति के रुप में कुछ नहीं था और न ही समाज में कोई दर्जा, इसलिये इनके परिवारों में पुरुषों को इनके बाहर निकलने और राजसत्ता से टक्कर लेने पर कोई ऐतराज नहीं था। उनके लिये हर दिन तिरस्कार और अपमान से भरा ही होता था, फिर यह संघर्ष तो उनके लगातार खन्डित हो रहे 'सम्मान के लिये' भी था। जो महिलायें आंदोलन में आयीं उन्होंने अपने गांव, परिवार एवं रिश्तेदारों में एक सम्मानजनक जगह बनाई। जैसा कि हम पहले भी उल्लेख कर चुके हैं कि संगठन का फैलाव दूरदराज़ के जंगलों तक महिलाओं की वजह से ही हो पाया, क्योंकि उन्होंने अपने मायके, रिश्तेदारों के गांवों में जा कर इस अलख को जगाया। उनका अपना प्रभाव था, इसलिये वे दूसरे गांवों में अपना असर छोड़ सकने में कामयाब हुईं।

इसके अलावा आंदोलन में जुड़ने के कारण इनके पारिवारिक झगड़ों में बहुत कमी आई, जो छोटे–छोटे मामले अक्सर थाने जाते थे, वो गांव के स्तर पर ही निपटाये जाने लगे। महिलाओं की सुरक्षा अपने परिवारों में बढ़ने लगी और भूमि और सम्पति पर महिलाओं के सामूहिक नियंत्रण को लेकर इन समुदायों के अधिकांश पुरुषों ने भी अपनी सहमति दी। हालांकि इस मामले में अभी भी संघर्ष ज़ारी है, लेकिन एक सकारात्मक बदलाव भी दिखाई दे रहा है। संगठन का सबसे ज्यादा फायदा गांव में बेसहारा व विधवा महिलाओं को हुआ, जिन्हें संगठन की ओर से विशेष रूप से संरक्षण प्राप्त हुआ। महिलाओं को उनके पतियों द्वारा छोड़ने की ही घटनाओं में भारी कमी आई। यहां तक कि इस तरह के विवाद आदि से बचने के लिये महिलाओं ने निर्णय लिया कि लड़कियों का विवाह वहीं किया जाये जहां संगठन है। ताकि उन्हें संगठन का संरक्षण भी मिलता रहे व वे संगठन की सदस्य भी रहें। परन्तु इन्हीं महिलाओं से जब यह पूछा गया कि क्या वे अपनी जीती हुई भूमि से अपनी बेटियों को हिस्सा देंगी तो अधिकांश महिलाओं ने कहा कि बेटियां तो दूसरे घर जायेंगी, उनको भूमि पर हिस्सा कैसे दिया जा सकता है। इस मुद्दे पर अभी भी बहस जारी है, परन्तु इस वक्त संगठन व संघर्षों से जुड़ी हुई महिलायें एक बेहद ही सकारात्मक बहस में भी शामिल हो चुकी हैं व उनकी सोच आम मध्यमवर्गीय महिलाओं से कहीं आगे जा रही है।

परिशिष्ट - 1

समुदायों द्वारा आंदोलन के तहत महिलाओं के नेतृत्व में कैमूर क्षेत्र के अलावा अन्य जगहों पर भूमि पर दख़ल सम्बन्धित आंकड़े

1. बसौली व उसके साथ अन्य 6 गांव	: 1500 बीघा (सन् 2001)
2. महुआंव गौसाई	: 27 बीघा (सन् 2003)
3. दरमा	: 500 एकड़ (सन् 2004)
4. केवटा	: 2.5 बीघा (सन् 2003)
5. पसई कलां, मझगाई	: 10 बीघा पट्टा हासिल किया गया (सन् 2005)
6. अकछोर	: 20 पट्टा (सन् 2005)
7. पुसौली	: 50 परिवारों के आवास की भूमि (सन् 2003)
8. भुलई, जिला चन्दौली	: 250 एकड़ (सन् 2005)
9. चन्दुली, जिला सोनभद्र	: 2.5 बीघा (सन् 2006)
10. भरसई,जि0 सोन0	: 4 बीघा आवासीय भूमि (सन् 2006)
11. रामगढ़ कोन, जि0सोन0	: 500 बीघा (सन् 2007)
12. राजाबांध, रीवा, मध्यप्रदेश	: 2000 एकड़ (सन् 2007)
13. हरिपुर टोंगीयां, जि0हरिद्वार	: 2000 एकड़ (सन् 2007)
14. झीरगा डंडी, जि0सोन0	: 250 एकड़ (सन् 2007)
15. सतद्वारी,जि0सोन0	: 500 एकड़ (सन् 2007)
16. ओहरांवा,जि0चन्दौली	: 350 बीघा (सन् 2007)
17. तिहरा,जि0सोन0	: 5 बीघा (सन् 2007)
18. कोदवनीयां,जि0सोन0	: 2000 एकड़ (सन् 2007)
19. जोरुखाड़,जि0सोन0	: 300 एकड़ (सन् 2007)
20. चरगड़ा,जि0सोन0	: 250 एकड़ (सन् 2008)
21. पतगढ़ी,जि0सोन0	: 250 एकड़ (सन् 2008)
22. खजरौल,जि0सोन0	: 118 बीघा (सन् 2007) पटटे जो कि पुनः दलित आदिवासियों को 40 साल बाद आंदोलन के तहत प्राप्त हुए
23. परासपानी,जि0सोन0	: 600 एकड़ (सन् 2007)
24. नारायणडीह,जि0सोन0	: 500 एकड़ (सन् 2007)
25. भवनाथपुर,जि0गढ़वा,झाड़खड़	: 1000 एकड़ (सन् 2008)
26. घोरावल,जि0सोन0	: 250 एकड़ (सन् 2008), कांग्रेस नेता के अवैध फार्म हाउस से ली गई भूमि
27. केतार,जि0सोन0	: 150 एकड़ (सन् 2008)

परिशिष्ट - 2

हरना कछार की महिलाओं का संघर्ष

उत्तर प्रदेश देश का ऐसा पहला राज्य है, जहाँ एक दलित महिला मुख्यमंत्री पद पर आसीन हुई हैं। इससे यहां के सामंती एवं पितृसत्तात्मक समाज में एक हलचल सी मची हुई है। उत्तर प्रदेश मानवाधिकार हनन एवं महिला उत्पीड़न के मामले में पूरे देश में अव्वल नम्बर पर है। ऐसा नहीं कि एक दलित महिला के मुख्यमंत्री बनने से रातोंरात इस प्रदेश की महिलाओं के प्रति यहां के समाज की सोच सकरात्मक रुप से बदल गयी हो, वो आज भी वहीं है। खुद माननीया मुख्यमंत्री को ही टिकैत द्वारा ऐसे अश्लील शब्द भरी सभा में सुनाये गये जो कि एक सभ्य समाज के लिये कलंक है।

उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री एक तो महिला हैं, और वो भी दलित। सभ्य समाज की दृष्टि एवं अभिव्यक्ति में यह कहावत साबित हो रही है कि ''एक तो करेला उस पर नीम चढ़ा।'' समाज में एक ख़ास तबका ही जब तिरस्कृत है, तो इस तबके की महिलाओं को तो आये दिन तिरस्कार और जिल्लत झेलना लाज़मी है। फिर वो चाहे किसी प्रदेश की मुख्यमंत्री ही क्यों न हो। अगर इस आधुनिक समाज में एक प्रदेश की महिला मुख्यमंत्री ही अपने सम्मान के लिए संघर्ष कर रही हो तो उन असंख्य दलित, आदिवासी महिलाओं की तो बात बहुत दूर है, जिनकी आवाज की कहीं कोई सुनवाई ही नहीं है। यूं तो महिलाओं के प्रति यह तिरस्कार और घृणा से भरी भावना सभ्य समाज मे हर तरफ दिखाई देगी। परन्तु यहां पर ख़ास उल्लेख कैमूर क्षेत्र की दलित, आदिवासी महिलाओं का है। जिनकी पिछले एक वर्ष से तमाम पुलिस प्रशासन से ज़बरदस्त ठनी है। एक तरफ पुरूष पुलिस फोर्स और दूसरी तरफ आन्दोलित होती दलित, आदिवासी महिलाओं की फोर्स। जो अब बिल्कुल आमने–सामने है। झारखंड, बिहार, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ की सीमा से सटे कैमूर क्षेत्र के सोनभद्र, मिर्ज़ापुर एवं चन्दौली जनपद महिला अभिव्यक्ति के गढ़ बन गये हैं। जहां सीधे–सीधे टकराव पुलिस, प्रशासन एवं वन विभाग के पौरूष से है। 24 सितम्बर 2008 को सोनभद्र के ग्राम हरना कछार में पुलिस और वन विभाग की फोर्स ने जंगल के अंदर नंगा नाच खेला और वनाधिकार एवं वनभूमि के लिए आन्दोलित महिलाओं को नंगा कर पीटा तथा उनके गुप्तांगों पर बेहद गहरी चोटें पहुंचाईं। यहां तक कि छोटे–छोटे बच्चे और बच्चियों को भी नही बख्शा गया। अपनी जीविका हेतु छोटी–छोटी भूमि पर खेती करने वाले यह आदिवासी, दलित एक तो मायावती के शासन से आश्वस्त हुए, दूसरा वनधिकार कानून 2006 से, कि आखिरकार अब उनकी खोई हुई भूमि उन्हे वापस मिल सकेगी। जिसे ऐतिहासिक काल में सरकार एवं वनविभाग ने उनसे छीन लिया था। महिलाओ के नेतृत्व में इस क्षेत्र में यह आन्दोलन तेजी पकड़ता जा रहा है।

जनपद सोनभद्र के आदिवासी गांव हरना कछार में अपनी जमीन को लेकर आन्दोलनरत महिलाओं ने पुलिस फोर्स को आता देख कर अपने पुरूषों को खदेड़ कर खुद मोर्चा सम्भाला और मुकाबला करने के लिये खड़ी हो गयीं। पुलिस और वनविभाग ने सबसे पहले वहां बनी सैकड़ों झोपड़ियों को फूंका, उनका सामान कई ट्रैक्टरो पर लादा, लूटा और फिर महिलाओं को नंगा कर पीटना शुरू किया। मात्र दो दिन पहले इन्हीं महिलाओं ने इस फोर्स को उस वक्त चुनौती दी थी, जब वे उनकी झोपड़ियां उजाड़ने आये थे। स्थानीय अख़बारों के अनुसार, जब एस0ओ0 बिंढमगंज ने एक महिला की साड़ी पकड़ कर फाड़ी तो सभी महिलाओं ने प्रतिरोध में मोर्चे पर तैनात हो अपनी–अपनी साड़ियों को हथियार बना उतार–उतार कर फोर्स पर फेंकना शुरू कर दिया तथा उनकी बन्दूकों से मुकाबला किया। इससे बौखलाई पुलिस को वापस भागना पड़ा। इस घटना ने पुलिस एवं वन विभाग के अहम और पौरुष को काफी चोट पहुँचाई। जो कि दलित, आदिवासी महिलाओं की ललकार थी। अपनी इसी मर्दानगी को बचाने के लिये दो दिन बाद पुलिस ने इन महिलाओं की बस्ती पर फिर धावा बोला और महिलाओं की इज्जत को तार–तार कर दिया। यह एक बेहद ही चिंताजनक बात है, कि यहां पुलिस विभाग अपने संवैधानिक दायित्वों एवं लोगों के संवैधानिक अधिकारों की बहाली (जो कि लोगो को कानून से प्राप्त है) के बजाय अपनी मर्दानगी को महिलाओं पर आजमाने के लिये पूरी ताकत झोंक रहा है। इस जनपद में महिलाओं के प्रति हिंसा की केवल एक ही घटना नहीं बल्कि पिछले वर्ष से महिलाओं पर यहां की पुलिस प्रशासन ने जिस तरह से हमले शुरू किए हैं, उससे ऐसा ही प्रतीत होता है कि उनके द्वारा किये गये ये हमले प्रतीकात्मक रूप से प्रदेश की मुख्यमंत्री पर हैं, जिसे वे बर्दाश्त नहीं कर पा रहे हैं। पिछले वर्ष अगस्त में लेखिका के साथ तीन महिलाओं पर वन अपराध से सम्बन्धित सैकड़ों झूठे आरोप लगाये गये तथा भूमि आंदोलन का नेतृत्व करने की सज़ा के रुप में रासुका में निरूद्ध किया गया। आरोप झूठे व बेबुनियाद पाये जाने पर पन्द्रह ही दिन के बाद प्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती द्वारा आरोपों को निराधार ठहरा रासुका को वापिस लिया गया। परन्तु स्थानीय मुकदमों की संख्या पचासों में है, जो अभी भी लगातार पुलिस एवं वन विभाग द्वारा पंजीकृत किये जा रहे हैं। केवल इसलिए क्योंकि इस पूरे कैमूर क्षेत्र में महिलाओं का भूमि एवं जंगल के अधिकार को लेकर एक सशक्त आन्दोलन है। जो कि पूरे वन क्षेत्र में फैला हुआ है। गौर तलब है कि इन्ही आन्दोलनों ने इस क्षेत्र में नक्सलवादी संगठन के फैलाव को बढ़ने से रोकने में काफी मदद की है। चूंकि यह क्षेत्र नक्सलवादी गतिविधियों के लिए मशहूर है, महिलाओं द्वारा शुरू किए गये वन एवं भूमि के अधिकारों पर लेखिका ही नही बल्कि 2000 दलित, आदिवासियों जिसमें 80 फीसदी महिलायें हैं, के ऊपर फर्जी मुकदमे वन अधिनियम एवं आई.पी.सी. की विभिन्न धाराओं के तहत दर्ज किये गये हैं। इलाहाबाद हाई कोर्ट के एक वरिष्ठ अधिवक्ता रवि किरण जैन के अनुसार कैमूर क्षेत्र की परिस्थिति इस समय आपातकालीन स्थिति से भी बद्तर है।

महिलाओं पर उसके बाद और भी भयानक हमले किये गये। जिसमें अहम भूमिका जनपद के पुलिस अधीक्षक की रही है, जो कि शायद माफिया, गुण्डों, ठेकेदारों, नक्सलियों से लड़ाई लड़ने में सक्षम नहीं हैं। इसलिए महिलाओं पर अपना ज़ोर आजमा रहे हैं। पिछले ही वर्ष अक्टूबर में ग्राम जवारीडांड में एक दलित महिला सुरसतिया की पुलिस, सी.आर.पी.एफ. ने गोली मार कर हत्या कर दी। इस मामले में पुलिस महकमे को बचाने के लिए पुलिस अधिकारियों ने कम से कम 200 आदिवासियों पर धारा 302 के झूठे मुकदमे क़ायम किये। कहा गया कि महिला को आदिवासियों ने पत्थरों से मार डाला है। वहां के दबंगों के साथ मिल कर पुलिस नें सारे तथ्यों को मिटाने का अपराध किया तथा उसके घरवालों को कैद कर रात ही रात में आनन–फानन में लाश को जला दिया तथा दलितों एवं आदिवासियों को आपस में लड़ाने का माहौल तैयार किया।

इसके बाद एक किन्नर पर निशाना साधा गया, शांती किन्नर जो कि एक सामाजिक कार्यकर्ता भी है, उसे वसूली के झूठे अपराध में गैंगस्टर एक्ट में निरूद्ध किया गया। किसी महिला किन्नर पर यहां पहली बार गैंगस्टर की कार्यवाही की गई। उन्हें भी महीनों जेल में रहना पड़ा। गोण्डवाना गणतंत्र पार्टी से जुड़ी शांति किन्नर को बड़ी मुश्किल से सामाजिक संगठनों की मदद से जेल से छुड़ाया गया। इसके अलावा ऐसी कई अन्य घटनायें हुईं, जहां पर किसी न किसी सूरत में यहां की पुलिस एवं वनविभाग ने जातिगत एवं साम्प्रदायिक तनाव फैलाने की पूरी कोशिश की। परन्तु वे अपनी कूटनीति में कामयाब नहीं हुये और न ही आदिवासियों, दलितों के आन्दोलन को नक्सलवादी आंदोलन का लेबल लगा सके।

परन्तु हाल ही में घटी अगस्त माह की घटना दिल दहला देने वाली थी। जब ग्राम जोरूखाड़ के सोन नगर में पुलिस और वनविभाग द्वारा यादव समुदायों को उकसा कर आदिवासी, दलितों की लगभग 300 झोपड़ियों को ख़ाक में मिला दिया, सामान, मवेशी लूट लिया गया, 500 बीघा की फसलें तबाह कर दी गईं। अगर समय रहते हस्तक्षेप न किया गया होता तो पूरा कैमूर क्षेत्र जाति गत हिंसा में जल रहा होता। इस घटना में यादव समुदायों के सरगना पर पहली बार एस.सी./एस.टी. कानून के तहत कार्यवाही हुई। इस घटना से बौख़लाई पुलिस और वनविभाग ने अब हरना कछार की महिलाओं पर हमला कर यह साबित कर दिया है, कि वह किसी भी महिला का नेतृत्व बर्दाश्त नहीं करना चाहती। यह केवल जनपद सोनभद्र में ही हो सकता है, जहाँ सामाजिक संगठनों में काम करने वाली तथा आंदोलनरत महिलाओं पर रासुका, गैंगस्टर, क्रिमीनल कानून, वन अपराध, आबकारी अपराध आदि पंजीकृत किया जाता है। महिलाओं के प्रति हिंसा एवं दमन इन पुलिस अफसरों की कमजोरी, बुज़दिली और कायरता को ही प्रदर्शित करता है।

हालांकि यहां की महिलाओं ने इस चुनौती को स्वीकारते हुए अपनी भूमि और जंगल को न छोड़ने का फैसला कर लिया है, और पुलिस प्रशासन को ऐलान कर दिया है कि उनके साथ छेड़ छाड़ की गयी तो वे 'पुलिस मुख्यालय के सामने निर्वस्त्र हो कर प्रर्दशन करेंगी।'

उल्लेखनीय है कि कैमूर क्षेत्र में एक लम्बे समय से चल रहे भू–अधिकार आंदोलन की कमान अब महिलाओं ने अपने हाथों में ले ली है। जो कि मील का पत्थर साबित हो रही है। पूरे क्षेत्र में मानो जनक्रांति की एक ज्वाला धधक रही है। महिलाओं द्वारा छेड़े गये इस आंदोलन ने सरकारों को भी चुनौती दी है और सोचने के लिये बाध्य किया है। एक लम्बे समय से निरंतर जारी यह दमन व उत्पीड़न इन्हें एक नये वर्ग संघर्ष की ओर ले जा रहा है। इन पीड़ित महिलाओं ने फैसला लिया है कि वे अपनी रंग–बिरंगी साड़ियों के इस हथियार को परचम बना देंगी। उनका मानना है कि उनकी रंग–बिरंगी साड़ियां देश की सांस्कृतिक विविधता का भी प्रतीक बनेंगी। इन वंचित महिलाओं की बढ़ती हुई चेतना व आक्रोश को समझने के लिए सरकारों के साथ–साथ सभ्य समाज को भी गम्भीरता से चिंतन करना होगा। आज इन क्षेत्रों में महिलायें अपने आप को व अपनी मांगों को सामूहिक रूप से अभिव्यक्त कर रही है। जहां–जहां महिलाओं के नेतृत्व में भू–आन्दोलन सशक्त होकर उभरे है, वहां–वहां सामन्ती सोच और पितृसत्तात्मक सम्बंधों में भी बदलाव दिखाई दे रहा है। ज़रूरत है कि भूमि की लड़ाई को समुदायों की इन संघर्शरत महिलाओं के दृष्टिकोण के आधार पर ही नये तरीके से परिभाषित किया जाये। चुंकि महिलायें ही इसके बारे में बेहतर तरीके से सोच सकती हैं। क्योंकि उनके लिये भूमि की लड़ाई मात्र आजीविका तक ही सीमित नहीं है। उनकी अस्मिता, आत्मसम्मान, संस्कृति व इन सबसे महत्वपूर्ण आने वाली पीढ़ियों के लिये एक सुरक्षित व सम्मान जनक जीवन की परिकल्पना के सवाल भी इससे जुड़े हैं। इन सवालों के हल के बारे में तय किया गया कोई भी रास्ता महिलाओं के भू–अधिकारों को स्थापित किये बिना अधूरा ही साबित होगा। समुदायों की आन्दोलनरत महिलायें इन तथ्यों से अच्छी तरह वाक़िफ भी हैं और अपने तरीके से अपनी ज़बान में इस बात को हमेशा अभिव्यक्त भी करती हैं। ज़रूरत है तो उस ज़बान को, उस अभीव्यक्ति को समझने की और लगभग जड़ हो चुकी पितृसत्तात्मक सोच व स्थापित हो चुकी सामन्तवादी रूढ़ियों से बाहर निकलकर महिलाओं की इस चेतन्य क्रान्ति को अपने अंजाम तक पहुंचाने के लिये इनके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने की।

परिशिष्ट - 3

नक्सल उन्मूलन की कवायद

नोटः प्रस्तुत लेख इस क्षेत्र में नक्सल उन्मूलन के संदर्भ में दिया गया है जो यहां की सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति के बारे में एक वास्तविकता बयान करता है। यह लेख सन् 2006 में लिखा गया था। तब से स्थिति में अभी तक ज्यादा बदलाव नहीं आया है अभी भी गरीब बेगुनाह ही लोगों को टारगेट कर नक्सली होने के नाम पर हमला किया जा रहा है।

सशत्र बलों से लदी गाड़ियों के क़ाफिले जिनमें एक से एक घातक हथियारों से लैस चाक चौबंद जवान, घूरती आंखों से सड़क पर चलने वाले राहगीर के शरीर में झुरझुरी पैदा कर देते हैं, साथ ही दहशत का ऐसा माहौल बनाते हैं कि आदमी चुपचाप ही खिसक लेने में भलाई समझता है। नौगढ़, सोनभद्र की सड़कों में इस तरह के दृश्य आम हो गये हैं। सशत्र बलों के वाहनों को देख कर लोगों में खुसर फुसर होने लगती है कि कहीं काम्बिंग में जा रहे हैं। कई थानों में बुलट प्रुफ गाड़ियां आ गयी हैं, बुलट प्रुफ जेकटों से जवान लैस है, नवीनतम घातक हथियार उन्हें उपलब्ध कराये गये है। वस्तुतः पूरा कैमूर छावनी बना हुआ हैं। जनपद सोनभद्र के साथ–साथ इससे सटे चन्दौली व मिर्जापुर ज़िले नक्सल प्रभावित ज़िले घोषित किये गये हैं, इन सभी जगहों पर एस. ओ. जी {स्पेशल आपरेशन ग्रुप} की टीमें रात दिन नक्सलीयों की टोह में मंड़राती रहती हैं। हर थाने व पुलिस चौकी के सुरक्षा के विशेष इंतज़ाम किये गये हैं, बेरीकेड़ीग की गयी है, जिसके पीछे हर समय एक जवान सर्तक भारी हथियार के साथ खड़ा रहता है। यह सारा तामझाम, यह भारी भरकम ख़र्च लोगों को नक्सलीयों से सुरक्षा प्रदान करने के नाम से किया जा रहा है। इस भारी भरकम ख़र्च के औचित्य को साबित करने के लिये साल भर में कुछ न कुछ घटनायें हो भी जाती हैं, जिन्हें नक्सलीयों की कार्यवाही की संज्ञा दी जाती है। जिस जनता की नक्सलीयों से सुरक्षा किये जाने की बात की जाती है वास्तव में उसका कितना उत्पीड़न होता है यह किसी भी गांव में जा कर देखा जा सकता है। तीनों जनपदों की जेलों में तमाम बेगुनाह, दलित, आदिवासी, नक्सलियों को शरण देना, नक्सल गतिविधियों में लगे होने या इसी तरह के अन्य फर्जी आरोपों के आधार पर जेलों में बंद किये गये है। बड़ी संख्या में बेगुनाह दलित आदिवासी फर्जी मुठभेड़ों में मारे गये। नक्सली घोषित गांव के विकास के नाम पर संसाधनों की बंदर बांट अरसे से ज़ारी है। इन सब के बावजूद बीच–बीच में आला पुलिस अधिकारीयों के यह बयान भी आते रहते हैं कि नक्सल समस्या का हल गोली से नहीं विकास से होगा, मानो नक्सल कोई छोटे से रूठे हुए बच्चे है जो लालीपाप से खुश हो जायेंगे। हालांकि निजी बातचीत में पुलिस अधिकारी स्वीकार करते हैं कि समस्या राजनैतिक है और इसका निदान भी राजनैतिक ढंग से ही हो सकता हैं। पुलिस व स्थानीय प्रशासन सभी यह मानते हैं कि समस्या की

जड़ इन जनपदों में जारी सामंती शोषण है, आदिवासियों की जमीनों की लूट है, संसाधनों से मेहनतकश जनता की बेदखली है। पर इन सब के बावजूद राजधानी में बैठे आकाओं के आदेशों का पालन करना ही है और जिन्हें लगता है कि यह मात्र कानून का मसला है जिसे राज्य की ताक़त से हल किया जा सकता है। जबकि कैमूर क्षेत्र के किसी भी गांव जाने पर यह चर्चा छिड़ते ही बरबस ही लोगों के मुंह से निकल ही आता है कि जब तक ग़रीबों को सताया जाता रहेगा, नौजवान मजबूरन हथियार उठायेंगे।

दस साल पहले कैमूर क्षेत्र में नक्सली गतिविधियों का हौवा इस कदर नहीं खड़ा किया गया था। उदारीकरण की बयार के बाद लोग जीविका के साधनों से तेज़ी से बेदख़ल हुए। उनके असंतोष और विरोध को दबाने के लिये तथा विदेशी आकाओं को यह दिखाने के लिये कि इलाके में सर्वत्र शांति है, नक्सल उन्मूलन अभियान शुरू किया गया। कैमूर क्षेत्र में इस अभियान की पहली बड़ी मुठभेड़ मिर्जापुर जनपद के भवानीपुर गांव में की गयी जिसमें सोलह निर्दोष दलित आदिवासीयों को कुख्यात नक्सली बता कर मारा गया जिनमें एक अध्यापक था और कम उमर के छात्र कल्लू भी था। इसके बाद फर्जी मुठभेड़ों की जो बयार चली वह आज भी थमने का नाम नहीं ले रही है, कभी दो, कभी चार, कभी एक को, कभी उनके घर से उठा कर, कभी बाज़ार, कभी भरी बस या जीप से उतार कर जंगल में लेजाकर मार दिया जाता और अगले दिन अख़बार में ख़बर छपती कि फलां जंगल में एक या दो दर्ज़न नक्सलीयों से भारी मुठभेड़ हुई, एक या दो मारे गये बाकि अंधेरे का लाभ उठा कर भागने में सफल हो गये। करहिया मुठभेड़, महुली मुठभेड़, धंधरौल बंधा मुठभेड़ आदि फर्जी एनकाउंटर बड़े सरकारी हत्याकांड़ के चंद नमूने भर हैं।

कुछ मामलों की पड़ताल करने पर ज्ञात हुआ कि असली वजह गांव के या बाहर से आये दबंग द्वारा दलित, आदिवासी की ज़मीन की लूट थी, जिसका विरोध करने पर पुलिस से सांठगांठ कर उन्हें प्रताड़ित किया गया और नक्सल गतिविधियों में लिप्त दिखाकर फर्जी मुठभेड़ दिखाया गया। सन् 2002 जनपद सोनभद्र का करहिया कांड़ जिसमें चार आदिवासी नौजवानों को खूंखार नक्सलाइट घोषित कर मार डाला गया जबकि बाद में पता चला कि उनमें से दो तथाकथित नक्सलाइट सुरेश व राजू जीवित हैं, जिन्होंनें जान बचाने की ग़रज से अदालत में छह माह बाद आत्मसर्मपण किया। इससे यह स्पष्ट था कि मारे गये दो युवक बेगुनाह थे। पुलिस आज तक यह नहीं बता सकी कि ये युवक कहां के थे और कौन थे। इसी प्रकार सन् 2002 अगस्त माह में ही महुली के जंगल में हुई तथाकथित मुठभेड़ में मारे गये महेश्वर गौंण व शशि कांत को चपकी गांव से सुबह सात बजे पुलिस पकड़ कर ले गयी। कैमूर क्षेत्र मज़दूर किसान महिला संघर्ष समिति एवं मानवाधिकार कानूनी सलाह केन्द्र की जांच दल ने पाया कि महेश्वर गौंण की ज़मींन बाहर से आये एक मार्किटिगं इन्सपेकटर ने हड़प ली थी। थोड़ी बहुत गांव के बाहर बची ज़मीन का अधिकांश भाग एन.टी.पी. सी ने हड़प्प ली थी। महेश्वर व उसके परिवार के लोगों ने हर जगह फरियाद की पर कोई सुनवाई नहीं

हुईं। महेश्वर के ही लड़के को नक्सलियों के साथ शामिल होने का एक आरोप लगाया गया और इसी लड़के को करहिया कान्ड में मार डाला गया।

ज़मीन की लूट की एक और कहानी है, मनबसा ग्राम के युवक रामशकल गौंण की, जिसे गांव के दबंगो का विरोध करने पर पुलिस से सांठ–गांठ कर नक्सल एरिया कमांड़र के आरोप में ढाई साल जेल में रखा गया। रामशकल के साथ–साथ आसपास के गांव से 12 अन्य आदिवासियों को नक्सल गतिविधियों के आरोप में पोटा लगा कर जेल भेजा गया। रामशकल को उसकी ससुराल से पकड़ा गया, जब वो छोटी बेटी के छठी के अवसर पर गया था। लेकिन पुलिस ने उसकी गिरफ्तारी कई दिनों बाद रेणुकूट रेलवे स्टेशन से दिखाई। पुलिस ने उसके पास से नक्सली साहित्य व गोला बारूद की बरामदगी भी दिखाई, जो पूरी तरह से फर्जी थी। करहिया में पुलिस मुठभेड़ में मारे गए चारों युवकों की शिनाख़्त भी रामशकल से कराई गई जब कि वह उनमें से किसी को भी नहीं पहचानता था। पुलिस वालों ने कई दिन उसे थाने में रख कर इतनी शारीरिक यातनायें दी और इतना आतंकित कर दिया था कि जैसे–जैसे पुलिस कहती वैसा–वैसा वो बयान देता।

कनच का मामला तो और भी चौंकाने वाला है, उस क्षेत्र के कुख़्यात सामंत राजनारायण गिरी के इशारे पर उसके बंधुआ मज़दूरों को ही नक्सली बना कर पकड़ा गया, क्योंकि उन्होंने राजनारायण के यहां बंधुआ मज़दूरी करने से इनकार कर दिया था। इतना ही नहीं राजनारायण ने कुछ युवकों को असलहे उपलब्ध करवाया और उनके द्वारा गांव के लोगों को धमका कर पैसा वसूल करता था। ये लड़के फर्जी नक्सली बनकर राजनारायण गिरी के लिये काम करते थे। इतने गम्भीर आरोपों के बावजूद पुलिस ने इस दबंग के ख़िलाफ कभी कोई कार्यवाही नहीं की। केतार गांव के मदन कुसवाहा जो गुजरात में काम करता था और उसकी पत्नी को ससुराल कनच से विदा करा कर ला रहा था, राजनारायण गिरी की निशानदेही पर मदन कुसवाहा को उसकी पत्नी और बच्चों के सामने बस से उतार कर पुलिस की जीप में बिठाकर अज्ञात स्थान पर ले जाया गया और अगले दिन जंगल में उसे ख़ाकी वर्दी पहना कर फर्जी मुठभेड़ दिखाया गया।

पड़ोस के जनपद चन्दौली में भी नक्सलियों से जनता की सुरक्षा के नाम से स्थानीय दलित आदिवासीयों को तरह–तरह से प्रताड़ित किया जाता है। आतंक और दहशत का आलम यह है कि लड़कों को घर से दूर रिश्तेदारों के यहां भेज देते हैं। पुलिस उत्पीड़न का अंदाज़ा हिनौत घाट में घटी एक घटना से लगाया जा सकता है जिसमें नवम्बर 2004 को पी.ए.सी की एक ट्रक को माओवादियों ने विस्फोट कर उड़ा दिया था, जिसमें 17 पी.ए.सी के जवान मारे गये थे। एफ.आई.आर 60 अज्ञात नक्सलीयों के नाम दर्ज़ की गयी।

पुलिस के दलालों व दबंगों के इशारे पर क्षेत्र के पचासों ग़रीब दलित आदिवासियों को इस केस में जेल भेजा गया। अधिकांश आरोपी अभी भी यातना सह रहे हैं। ग़रीबी एवं पुलिस के दबाव के कारण कोई इनकी पैरवी करने के लिये तैयार नहीं होता। वास्तव में नक्सल उन्मूलन के नाम पर पुलिस प्रशासन सामंतों की दबंगई बनाये रखने, उनके द्वारा ग़रीबों की ज़मीन हड़पने और सामंतो की इस लूट के ख़िलाफ दलित आदिवासी युवकों द्वारा किये जा रहे विरोध को कुचलने के लिये ही हमेशा तत्पर रहता है, और एस.ओ.जी पुलिस दबंगों को अपने साथ लेकर उनकी निशानदेही पर घरों में घुसकर मारपीट व महिलाओं को अपमानित कर आंतक फैला रही है। यही कारण है कि इलाके के कुख्यात सामंत गोविन्द सिंह के यहां पी.ए.सी का केम्प लगता है। निजी बातचीत में पुलिस के आला अफसर इस सचाई को दबी ज़ुबान से स्वीकार करते हैं कि गोविन्द सिंह की पहुंच तो ऊपर तक है।

अगर दुनिया की बड़ी ताक़तें यहां की वन एवं ख़निज सम्पदा के निर्बाध दोहन के लिये और उनके ख़िलाफ उठने वाले विरोध के स्वर को कुचलने के लिये, शांति व्यवस्था बनाये रखने के नाम पर इस क्षेत्र में चल रहे नक्सल उन्मूलन अभियान को खुले हाथों आर्थिक सहायता दे रही हों तो इसमें क्या आश्चर्य ?

परिशिष्ट – 4

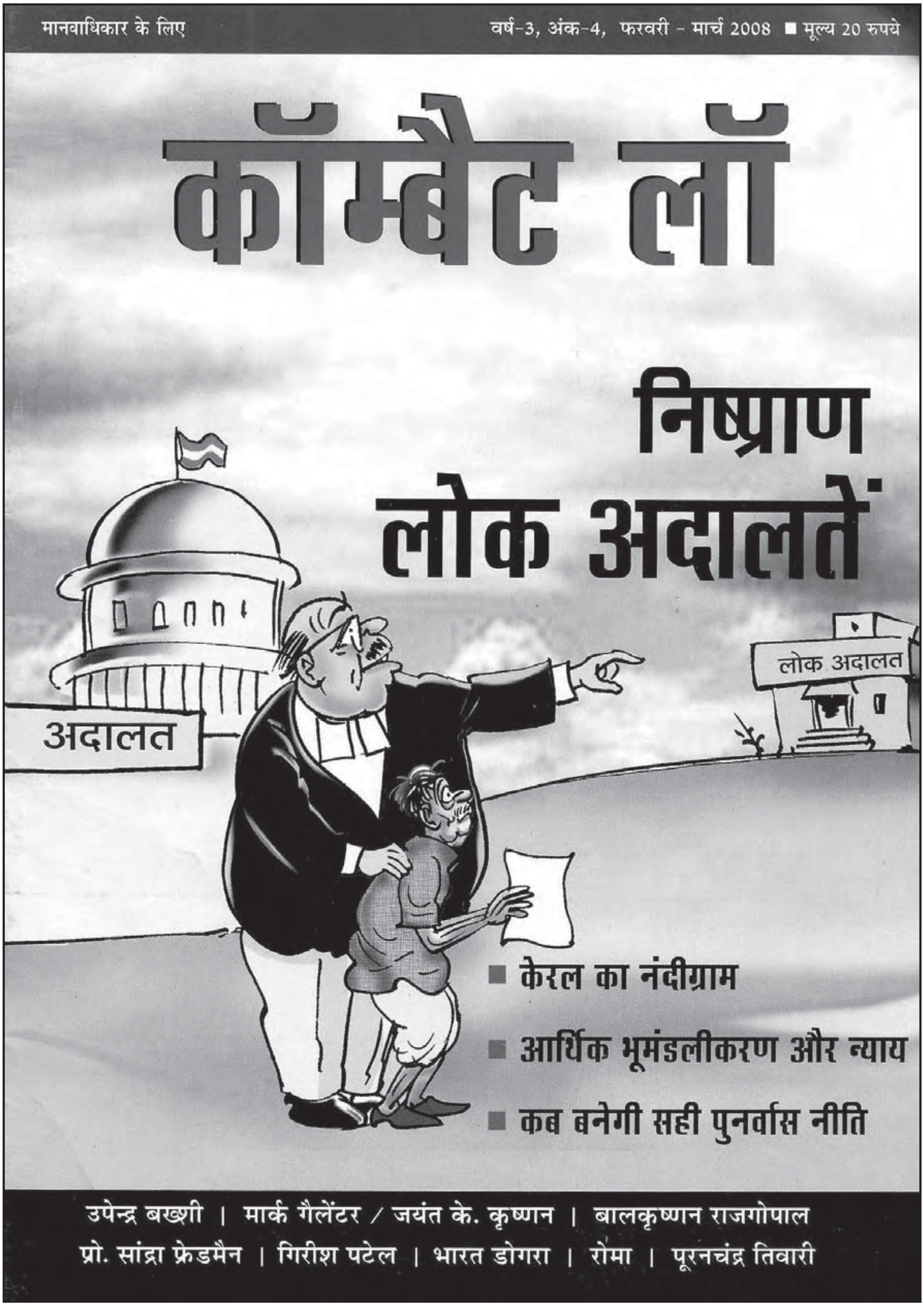
मानवाधिकार के लिए
वर्ष-3, अंक-4, फरवरी - मार्च 2008 ■ मूल्य 20 रुपये
कॉम्बैट लॉ
निष्प्राण लोक अदालतें
अदालत
लोक अदालत
■ केरल का नंदीग्राम
■ आर्थिक भूमंडलीकरण और न्याय
■ कब बनेगी सही पुनर्वास नीति
उपेन्द्र बख्शी | मार्क गैलेंटर / जयंत के. कृष्णन | बालकृष्णन राजगोपाल
प्रो. सांद्रा फ्रेडमैन | गिरीश पटेल | भारत डोगरा | रोमा | पूरनचंद्र तिवारी

परिशिष्ट - 5

दलित अधिकार

केरल का नंदीग्राम

बंगाल में नंदीग्राम और केरल में चेंगेरा, दोनों ही प्रदेशों में सीपीएम की हुकूमत और दोनों ही प्रदेशों में दलितों, आदिवासियों, अल्पसंख्यकों, किसानों, मजदूरों और महिलाओं ने भूमि पाने को लेकर भूमि सुधार के लिए जंग छेड़ दी है। जहां एक ओर नंदीग्राम में वाम सरकार ने अपने ही सिद्धान्तों और नीतियों को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के पास बतौर गिरवी रख दिया है तथा विकास की नई परिभाषा 'कृषि नहीं, औद्योगिक विकास' की व्याख्या की है, वहीं चेंगेरा में दलितों ने भूमि पर दखल कर ठीक इसके विपरीत विकास की परिभाषा को पुनः परिभाषित किया है। 'चेंगेरा भूमि आंदोलन' पर **रोमा** की रपट

तिरुवेला से 38 किमी दूर हरे-भरे रास्ते से होते हुए चेंगेरा प्लान्टेशन में पहुंचकर एक अलग ही परिदृश्य देखने को मिला। हजारों हेक्टेयर में फैले 'हैरीसन मलयालम' को लीज पर दी गई जमीनों पर रबर के पेड़ों के बीच हजारों दलित परिवारों ने नीली पन्नियों से छोटी-छोटी झोपड़ियां बना कर उस भूमि पर अपनी बस्ती बनाई हुई है। पहाड़ से बहकर आ रहे पानी पर बने एक छोटे से पुल से होकर 'चेंगेरा भूमि आन्दोलन' को समर्थन देने सामाजिक आन्दोलनों का दल सबसे पहले धरने पर बैठे हुए लोगों से मुखातिब हुआ। धरना एक छोटी सी झोपड़ी में बैठकर दिया जा रहा था। धरना स्थल पर रखी बाबा भीमराव आम्बेडकर व अय्यनकाली (केरल के दलित नेता) की तस्वीर के सामने ज्योति जल रही थी। धरना स्थल पर सात महिलाएं गले में फूल मालायें डालकर लगातार नारे लगा रही थीं, 'हमें जमीन दो या गोली दो' और 'अय्यनकाली जिन्दाबाद'! महिलाओं और बच्चों का उत्साह देखते ही बनता था। गानों की तरह लग रहे थे नारे, धीरे-धीरे अगल-बगल की पहाड़ियों से एक-एक करके महिला, पुरुष सामने आते गये और हजारों की संख्या में तब्दील हो गये। उस समय हो रही बारिश में खड़े-खड़े ही एक बड़ी आमसभा भी हुई, जिसमें राष्ट्रीय वनजन श्रमजीवी मंच, कैमूर क्षेत्र मजदूर किसान महिला संघर्ष समिति, दिल्ली फोरम, इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट, एक्शन-2007 और बिहार सोशल इंस्टीट्यूट के प्रतिनिधियों ने आम सभा को सम्बोधित किया तथा देश के अन्य हिस्सों में हो रहे आन्दोलनों जैसे - कैमूर (उत्तर प्रदेश) रीवां (मध्य प्रदेश), नंदीग्राम, सिंगूर तथा उत्तराखंड के बारे में बताया।

केरल के पतनमदित्ता जिले के ब्लाक कोनी में चेंगेरा प्लान्टेशन क्षेत्र में पांच हजार दलित परिवारों ने सत्तारूढ़ सरकार के 'भूमि सुधार' कार्यक्रमों के ऊपर सवाल उठाते हुए 'हैरीसन मलयालम' की दी गयी प्लान्टेशन की हजारों एकड़ भूमि पर अगस्त 2007 में अपना दखल कायम कर लिया है। आखिर इतने वर्षों से इन दलित परिवारों को यह आस बनी हुई थी कि केरल में हुए बेहतरीन भूमि सुधार कार्यक्रमों का लाभ उन्हें भी मिलेगा। परन्तु यह ख्वाब, ख्वाब ही रह गया तथा केरल के खेतिहर और प्लान्टेशन मजदूरों को भूमि सुधार कार्यक्रमों से सुनियोजित ढंग से बाहर रखा गया।

गौरतलब है कि इन दलित परिवारों ने राजसत्ता को सीधे-सीधे चुनौती दी है कि 'या तो हमें जमीन दो, नहीं तो गोली।' इस आन्दोलन में बड़ी तेजी से और भी दलित परिवार धीरे-धीरे शामिल होते जा रहे हैं जोकि किसी और भूमि के लिए नहीं बल्कि 'हैरीसन मलयालम' कम्पनी को लीज पर दी गयी रबर प्लान्टेशन वाली भूमि को लेकर सवाल उठा रहे हैं। दलित परिवार भूखे-प्यासे मौसम की प्रतिकूल परिस्थितियों से भी जूझते हुए अपने संघर्ष को जारी रखे हुए हैं। इनके संघर्ष को रोकने के लिए पुलिस ने चारों ओर से नाकाबंदी कर दी है। चिकुनगुनियां से पीड़ित या फिर अन्य बीमारियों से पीड़ित ये लोग अपना इलाज अस्पताल तक कराने नहीं जा सकते। संघर्ष के चलते बच्चे अपने बुनियादी मौलिक अधिकार यानि शिक्षा से भी वंचित हैं, अन्य मूलभूत सुविधाओं का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। केरल जैसा प्रदेश जो कि देश में भूमि सुधार एवं शत-प्रतिशत साक्षरता के मॉडल के रूप में जाना जाता है, वहां दलितों की दयनीय स्थिति देखकर बहुत अचम्भा हुआ।

> **दलित परिवारों ने राजसत्ता को सीधे-सीधे चुनौती दी है कि 'या तो हमें जमीन दो, नहीं तो गोली।' इस आन्दोलन में बड़ी तेजी से और भी दलित परिवार धीरे-धीरे शामिल होते जा रहे हैं जो कि किसी और भूमि के लिए नहीं बल्कि 'हैरीसन मलयालम' कम्पनी को लीज पर दी गयी है**

केरल देश का ऐसा प्रदेश है जहां प्रति व्यक्ति आय 25,764 रुपये है। यही एक ऐसा प्रदेश है जहां 1000 पुरुषों के अनुपात में महिलाओं की संख्या 1058 है जोकि देश में सबसे बेहतर है। केरल में सबसे अच्छी स्वास्थ्य सेवायें, जन्म एवं मृत्यु दर सबसे कम और मजदूरों की दिहाड़ी देश में सबसे ज्यादा है तथा साक्षरता देश में सबसे ज्यादा 90.86 प्रतिशत है।

लेकिन क्या केरल के दलित, आदिवासी एवं अन्य गरीब तबके भी इस तथाकथित 'केरल शाइनिंग' की गिनती में कहीं आते हैं? चेंगेरा में आकर ऐसा बिल्कुल प्रतीत नहीं होता। वर्ष 1966 के सरकारी आंकड़ों के अनुसार केरल में 10 लाख एकड़ भूमि आवंटन हेतु उपलब्ध थी परन्तु अभी तक केवल चार लाख एकड़ भूमि ही भूमिहीनों को आवंटित हो पायी है। दलितों के पास भूमि औसतन 0.43 एकड़ है जबकि अन्य के पास 0.86 एकड़ है। योजना आयोग के अनुसार केरल की गरीबी दर वर्ष 2000 में केवल 9.4. प्रतिशत ही रह गयी थी। परन्तु प्रोफेसर प्रभात पटनायक के अनुसार संसाधनों का सही बंटवारा न होने के चलते केरल की गरीबी 38 प्रतिशत होनी चाहिये।

प्रोफेसर प्रभात पटनायक द्वारा दर्शाये गये आंकड़ों की झलक पिछले कई वर्षों से केरल में लगातार आदिवासियों व दलितों द्वारा मातुंगा, कन्नूर जिले में 'आरल' फार्म की साढ़े सात हजार एकड़ जमीन पर और अब चेंगेरा में भूमि पाने को लेकर जनसंगठनों के नेतृत्व में आन्दोलन में दिखाई देती है।

सबसे अचम्भित करने वाला सवाल यह है कि केरल को भूमि सुधार का अगर सबसे अच्छा मॉडल माना जाता है तो इस प्रदेश के दलित, आदिवासी एवं अन्य गरीब तबकों को भूमि क्यों नहीं मिली? इस सवाल का जवाब पतनमदित्ता, चेंगेरा में दलितों के छेड़े गये भूमि आन्दोलन को देखकर समझ में आता है। केरल में आदिवासी जनसंख्या 1.14 प्रतिशत है तथा दलितों का 9.81 प्रतिशत है। आज केरल में भूमिहीनों का 85

दलित अधिकार

प्रतिशत इन्हीं तबकों में से है। ये वही तबके हैं जो सदियों से गुलाम रहे तथा केरल की आधुनिक सोच वाली वाम सरकार के राज में भी ये दलित गुलामी की त्रासदी झेलते रहे। इन्हें भूमि सुधार कार्यक्रमों से बाहर रखा गया क्योंकि वर्ण व्यवस्था में दलित समुदायों का कर्तव्य केवल सेवा करना है, न कि कोई अधिकार पाना और केरल की सत्तारूढ़ वाम सरकार भी इस जातिगत मानसिकता से ग्रसित है।

केरल में भूमि सुधार कानून वर्ष 1957 में बना, परन्तु यह कानून 1970 में जाकर लागू हुआ जिसके पीछे एक खास वजह थी। यह कानून जमींदारों, मालगुजारों, उच्च जातियों के सामन्तों व प्लान्टेशन कम्पनियों के हितों के खिलाफ था, इसलिए इस कानून में काफी फेरबदल की गुंजाइश रखी गयी।

कुल मिलाकर भूमि सुधार कानून का लाभ बड़े किसानों और खासतौर पर मध्यम किसानों को मिला, जो कि बड़े किसानों से जमीनें किराये पर लेकर खेती करते थे, परन्तु खेतिहर मध्यम किसानों व सामन्तों ने मजदूरों को भौमिक अधिकार नहीं दिये। दूसरी ओर, भूमि हदबंदी के तहत 20 एकड़ की हदबंदी कर दी गयी, जिसमें जमींदारों और बड़े किसानों ने भूमि अपने परिवारों के विभिन्न सदस्यों एवं रिश्तेदारों के नाम दर्ज करवा ली।

इस सब के अलावा जो सबसे महत्वपूर्ण पहलू केरल में है शायद अन्य किसी और जगह नहीं है। वह है रबर प्लान्टेशन कम्पनियों के अधीन हजारों हेक्टेयर भूमि को भूमि सुधार कानून के दायरे से बाहर रखना। रबर प्लान्टेशन केरल की आर्थिक मजबूती का आधार है। बड़े पैमाने पर जंगलों को काटकर रबर की खेती ब्रिटिश हुकूमत के दौरान हजारों-हजारों हेक्टेयर में कायम की गयी। रबर की खेती के कारण सरकारों ने जंगल और जमीनों को स्थानीय लोगों के हाथ से छीन कर पूंजीपतियों एवं निजी हाथों को सौंप दिया। उन्हीं में से एक ब्रिटिश कम्पनी "हैरीसन" को आजादी से पहले 1048 एकड़ भूमि 100 साल के लिये लीज पर दी गयी थी, जैसा कि अंग्रेजी हुकुमत द्वारा तमाम अन्य दक्षिण एशियाई देशों में किया गया।

यह लीज 1996 में समाप्त हुयी। उसके बाद आजाद भारत में वर्ष 1996 में सरकार एवं 'हैरीसन मलायलम' के बीच पुनः 2500 हेक्टेयर के लीज का इकरारनामा हुआ, जिसमें हैरीसन कम्पनी द्वारा इस भूमि के अलावा लगभग 6000 हेक्टेयर भूमि पर अवैध कब्जा किया गया। जैसा कि अन्य राज्यों में हुआ जिसमें सामुदायिक जंगल, सार्वजनिक उपयोगों की भूमि, जंगल, पहाड़, चट्टानें आदि भूमि थी। सरकारों ने बिना जांच-पड़ताल के वन विभाग को जमीनें स्थानांतरित कर वन विभाग को देश का सबसे बड़ा जमींदार बना दिया। इसी तरह केरल में प्लान्टेशन कंपनियों को इस प्रदेश का सबसे बड़ा जमींदार बना दिया गया। जहां एक ओर प्लान्टेशन कंपनियों को भूमि सुधार के दायरे से तो बाहर रखा गया वहीं दूसरी ओर केरल की करीब 65 प्रतिशत भूमि को भूमि सुधार कानून में कई बार ड्राफ्ट बदल कर प्लान्टेशन कंपनियों के अधीन किया गया। भूमि रिकॉर्ड में यह सब हेरा-फेरी राजस्व विभाग द्वारा गांव में ही बैठकर तहसीलदार, पटवारी एवं तमाम राजस्व अमले ने प्लान्टेशन कंपनियों के हितों में की।

> **सबसे अचम्भित करने वाला सवाल यह है कि केरल को भूमि सुधार का अगर सबसे अच्छा मॉडल माना जाता है तो इस प्रदेश के दलित, आदिवासी एवं अन्य गरीब तबकों को भूमि क्यों नहीं मिली? इस सवाल का जवाब पतनमदित्ता, चेंगेरा में दलितों के छेड़े गये भूमि आन्दोलन को देखकर समझ में आता है**

इसके अलावा मंदिरों व अन्य ट्रस्टों के पास निहित हजारों हेक्टेयर भूमि को भी इस कानून से बाहर रखा गया। प्राइवेट फारेस्ट को भी भूमि सुधार से बाहर रखा गया, हालांकि अन्य राज्यों की तरह इन भूमियों को वन विभाग को स्थानान्तरित नहीं किया गया, बल्कि इन जमीनों को लीज पर देकर बाद में बेच दिया गया। इन सब के अलावा करीब डेढ़ लाख हेक्टेयर भूमि चाय बागानों के अधीन अलग कानून बनाकर निहित की गयी। यह भूमि भी भूमि सुधार कानून के दायरे से बाहर रखी गयी।

'सादूगना विमोचना संयुक्ता वेदी' (जो कि एक दलित संगठन है) का कहना है कि "इन प्लान्टेशन कम्पनियों के अवैध कब्जे से अगर भूमि को छुड़वा लिया जाये तो सरकार के पास कोई 10 लाख हेक्टेयर से भी अधिक भूमि सरप्लस में उपलब्ध हो सकती है। परन्तु इस कार्य के लिए सीपीएम सरकार इसलिये इच्छुक नहीं है क्योंकि इस पार्टी के नेताओं का मानना है कि जो सरकार भूमि सुधार लागू करने जायेगी, वह सरकार सत्ता में नहीं रहेगी।"

चेंगेरा में लड़ रहे दलित संगठन का कहना है कि जातिवाद के चलते उनका जनसंगठन कभी नहीं बन पाया, परन्तु 1901-1907 के दौरान जब दलितों के साथ घोर अन्याय होता था, उनको रास्ता नहीं चलने दिया जाता था, उन्हें साफ कपड़े नहीं पहनने दिया जाता था, उनके साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार होता था तब इस समाज के एक दलित नेता अय्यनकाली ने केरल के विभिन्न हिस्सों में लम्बी बैलगाड़ी यात्रा कर दलित समाज के भूमि पर हक की बात सबसे पहले उठायी थी। उसी आंदोलन को पुनर्जीवित करते हुए अब चेंगेरा के दलित नेता लाहा गोपाल और महिला नेत्री सरस्वती का कहना है कि "हम हमेशा बीपीएल के नीचे नहीं रहना चाहते हैं, हमारी गरीबी केवल भूमि मिलने से खत्म होगी"। इसलिए भूमि दखल

करने के इस संघर्ष में यहां के दलित अय्यनकाली और बाबा साहब आम्बेडकर के विचारों को पुनर्जीवित कर रहे हैं। इस दलित संगठन के नेता आज यह बात कह रहे हैं कि देश भर के दलित संगठन या पार्टियां हमेशा सरकारी नौकरियों व सेवाओं में आरक्षण आदि की भीख तो सरकार से मांगते रहे, परन्तु दलितों के भूमि अधिकार के संघर्ष को आगे नहीं बढ़ा पाये। इसके कारण दलित हमेशा ही दया के पात्र बने रहे। कहीं न कहीं इन सब कवायदों ने दलितों के अन्दर की राजनीतिक चेतना के विकास को अवरुद्ध किया है। चेंगेरा के नौजवान दलित नेताओं का कहना है कि चेंगेरा संघर्ष वंचित समुदायों का संघर्ष है, जिन्हें सभी प्राकृतिक विरासतों पर अधिकार चाहिए।

चेंगेरा ने न सिर्फ इस भूमि संघर्ष में 'दलित एजेंडा' को नये तरीके से परिभाषित किया है बल्कि दलित बुद्धिजीवियों व अन्य प्रबुद्ध वर्गों को भी भूमि संघर्ष से सीधे-सीधे दलितों के सर्वांगीण विकास के साथ जोड़कर देखने के लिए भी बाध्य किया है। इस नये दलित एजेंडे के तहत दलित नेतृत्व का यह सवाल है कि 'दलितों का भूमि से जो नैसर्गिक एवं सांस्कृतिक रिश्ता था उससे उसे क्यों अलग किया गया?' उनका कहना है कि अय्यनकाली ने आज से सौ साल पहले एक एकड़ की मांग की थी परन्तु आज तक भी मुश्किल से 30-40 प्रतिशत ही मिला, आखिर क्यों? चेंगेरा के दलित संगठनों का यही गुस्सा है कि सत्तारूढ़ वाम सरकार ने जो भी भूमि आवंटन कार्यक्रम चलाया उसमें दलितों को भूमि यानि आजीविका के अधिकार से बाहर रखा।

दूसरी ओर चेंगेरा के आंदोलन को लेकर केरल की वाम सरकार का मानना है कि ये दलित आक्रमणकारी हैं तथा इनको खुफिया तौर पर आतंकवादी संगठनों की मदद मिल रही है। वाम सरकार इस आन्दोलन से बेहद भयभीत है तथा प्लान्टेंशन कम्पनी के अन्दर सीटू यूनियन के माध्यम से चेंगेरा के दलित परिवारों को भड़काकर इस आन्दोलन को विफल करने में लगी है। परन्तु ऐसा सम्भव न होने के कारण अब वाम सरकार इन परिवारों को बेदखल करने की नहीं, बल्कि इसका निदान ढूंढने में लगी है। उच्च न्यायालय भी हालांकि हैरीसन मलायलम की याचिका पर भी कोई ठोस निर्णय नहीं दे पायी है तथा सारे मामले को अब प्रदेश सरकार के ऊपर छोड़ दिया है।

इस संघर्ष ने नये एवं बुनियादी भूमि सुधारों की बहस को नये राजनीतिक एजेंडे के रूप में समस्त पार्टियों के समक्ष पेश किया है यानी कि 'आंख खोलने' का काम किया है। यहां तक कि अब गृह मंत्रालय द्वारा यह जांच की जा रही है कि 'हैरीसन मलयालम' के पास कुल कितनी भूमि है और कितनी अवैध तरीके से उसके कब्जे में है?

चेंगेरा में छेड़ा गया दलितों का भूमि संग्राम न थकने वाला संग्राम है। अब चाहे उसे अतिक्रमणकारी कहा जाय, नक्सलवादी या आतंकवादी, वे भूमि लेकर ही रहेंगे क्योंकि यही संकेत अन्य प्रदेशों के संघर्षों में भी सामने आ रहा है। उत्तर प्रदेश एवं झारखंड के आदिवासियों-दलितों द्वारा कैमूर क्षेत्र में 10,000 एकड़ से अधिक भूमि पर दखल, मध्य प्रदेश रीवां में 5000 एकड़ भूमि पर आदिवासियों का दखल। दूसरी ओर देश भर में जैसे पं.बंगाल में नंदीग्राम, उड़ीसा में पॉस्को सोनभद्र में जेपी सीमेन्ट व उप्र में रिलायंस द्वारा भूमि का हस्तांतरण तथा इसके जवाब में भूमिहीन, दलित आदिवासी महिला व अन्य गरीब तबकों द्वारा भूमि पर जो दखल कायम करने का संघर्ष शुरू हुआ है, वह वर्ग संघर्ष की ओर इंगित करता है। गरीब जनता द्वारा किये गये इस दखल को संवैधानिक बनाम असंवैधानिक, कानूनी बनाम गैर-कानूनी, अतिक्रमणकारी बनाम कानूनी हक अधिकारी, आतंकवादी बनाम नक्सलाइट के पैमाने पर आंका जा रहा है। परन्तु यह बात कोई नहीं कह रहा है कि 60 वर्षों से असंतुलित विकास, सामाजिक विषमताएं, भूख, गरीबी, लाचारी, दंगे-फसाद, उत्पीड़न, अत्याचार, शोषण की चक्की में पिसते-पिसते निचले वर्ग में एक ऐसी राजनीतिक चेतना का संचार हुआ है जो अपनी जनवादी जगह समाज में स्वयं बना रही है। जिसके पीछे किसी राजनीतिक दल का कोई सहयोग नहीं है तथा यह राजनीतिक चेतना राजसत्ता को सीधे-सीधे चुनौती दे रही है। यह कहना यहां अतिशयोक्ति नहीं होगा कि आज दलित आदिवासियों की चेतना का स्तर नक्सलवादी संगठनों व सत्तापरस्त नेताओं से कहीं ज्यादा आगे पहुंच गया है। वे किसी के मातहत नहीं रहे हैं न ही वे किसी का इंतजार कर रहे हैं। चेतना के विकास का ही असर है कि 2004 के लोकसभा चुनाव में जनता ने एनडीए सरकार को उखाड़कर संयुक्त प्रगतिशील संगठन सरकार को सत्तासीन किया और यह मतदान निश्चित रूप से गरीबी, भूमंडलीकरण और कुशासन के खिलाफ था। ■

चेंगेरा के आंदोलन को लेकर केरल की वाम सरकार का मानना है कि दलित आक्रमणकारी हैं तथा इनको खुफिया तौर पर आतंकवादी संगठनों की मदद मिल रही है। वाम सरकार इस आन्दोलन से बेहद भयभीत है तथा प्लान्टेंशन कम्पनी के अन्दर सीटू यूनियन के माध्यम से चेंगेरा के दलित परिवारों को भड़काकर इस आन्दोलन को विफल करने में लगी है

परिशिष्ट – 6

राजकाज : वन कानून का जंगलराज बनाती राजनीति

वनों में रहने वाले दस करोड़ से अधिक वनाश्रितों को एक साल के लम्बे इंतजार के बाद इस वर्ष की शुरुआत में वनाधिकार कानून 2006 को लागू करने की अधिसूचना मिली है।

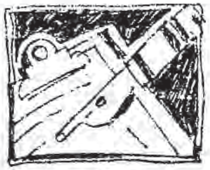

कमेंट्री

इतने लम्बे इंतज़ार के बावजूद इस कानून का वास्तविक लाभ वनों पर निर्भर वनसमुदायों को मिले, इसकी राजनैतिक इच्छा सरकार में नज़र नहीं आ रही है। यह एक ऐतिहासिक कानून है, जिसने पहली बार अंग्रेज और भारतीय सरकार के अब तक के बनाये गये वनकानूनों के विपरीत वनसमुदायों को वनों पर उनके मौलिक अधिकारों को मान्यता दी है। अब जब इस कानून को ज़मीनी स्तर पर लागू करने की बात आ रही है, तो भ्रम की स्थिति है।

जिस जोश से संसद में इस कानून को पास किया गया, इसको लागू कराने के लिये वह जोश न तो केन्द्र सरकार और न ही राज्य सरकारों में नज़र आ रहा है। केवल वही राज्य इस कानून में रुचि दिखा रहे हैं, जिन राज्यों में इस वर्ष विधानसभा चुनाव होने हैं। दूसरे राज्यों में इस कानून के ऊपर ज़रा सी भी चर्चा नहीं।

उत्तराखण्ड में इस कानून को लागू करने की अधिसूचना अभी तक ज़ारी ही नहीं की गई है। वहां की सरकार, वन विभाग और प्रशासन राष्ट्रीय पार्कों से वन गूजर समुदाय के लोगों को जबर्दस्ती बेदखल करना चाहते हैं। यहां तक कि वन गूजरों की बेदखली के खिलाफ उच्च न्यायालय के आदेश को भी पार्क निदेशक राजा जी राष्ट्रीय पार्क द्वारा अवमानना की जा रही है।

उत्तर प्रदेश में जो अधिसूचना ज़ारी की गई उसमें से केवल उन्हीं जिलों को चुना गया है जहां अनुसूचित जनजाति समुदाय रहते हैं। पर ऐसे कई जिले जैसे चित्रकूट, सहारनपुर, चन्दौली वगैरह हैं, जहां अन्य आदिवासी और वनाश्रित समुदाय रहते हैं, उन्हें इस अधिसूचना में शामिल ही नहीं किया गया। जबकि अधिसूचना सभी जिलों के लिये होनी चाहिए। उड़ीसा, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, गुजरात आदि में कानून में लिखित भौमिक अधिकारों को पट्टे के रूप में परिभाषित कर प्रचार किया जा रहा है। जबकि अन्य अधिकार जैसे सामुदायिक भौमिक अधिकार और वनोपज पर अधिकार की कहीं चर्चा ही नहीं की जा रही है। हालांकि कानून में पट्टे की बात कहीं नहीं है। गुजरात सरकार जिसे इस कानून के क्रियान्वयन का माडल माना जा रहा है, वहां सरकार पहले आदिवासी इलाकों में इस कानून को लागू कर रही है और बाद में अन्य इलाकों में। यही माडल अन्य प्रदेशों की भाजपा सरकार भी अपना रही है। जबकि कानून में इलाकों को अलग-अलग बांटे जाने का कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया।

राज्यों में कानून के बारे में जानकारी न होने के कारण भी बहुत सारे भ्रम फैलाये जा रहे हैं। अधिकांश नौकरशाहों को इस कानून के बारे में जानकारी ही नहीं है और जिन्हें थोड़ी बहुत है, वे पहले के वनकानूनों और वनाधिकार कानून के अंतर को न समझते हुए इसे भी नया वन कानून मानते हैं, और लागू कराने के लिये वन विभाग का मुंह ताक रहे हैं। जबकि इस कानून में वन विभाग की भूमिका को नगण्य कर दिया गया है। ऐसे कई हास्यास्पद उदाहरण हैं, जैसे, उत्तराखंड के विधानसभा अध्यक्ष तक को भी इस वनाधिकार कानून के बारे में मालूम नहीं, कहा कि 'वन मंत्री से बात करूंगा'। वहीं जनपद चन्दौली, उत्तर प्रदेश के जिलाधिकारी से जब कानून के क्रियान्वयन की बात की गई तो उन्होंने कहा कि वो लखनऊ जाकर प्रमुख सचिव वन से बात करेंगे जबकि कानून के मुताबिक राज्य स्तर पर इसके अध्यक्ष मुख्य सचिव व वन विभाग के प्रमुख सचिव केवल सदस्य होंगे। उत्तराखंड की पीसीसीएफ ने टोंगियां ग्रामों (वनग्राम) के लिये यहां तक कह दिया कि 'टोंगियां ग्राम इस कानून के दायरे से बाहर रख दिये गये हैं'। कहीं यह कहा जा रहा है कि 'यह कानून पार्क और सेन्चुरी में लागू नहीं' तो कहीं 'वनग्रामों में लागू नहीं' आदि। सरकारें ऐसा क्यों कर रही हैं? जहां सरकारें रोजगार गारंटी और सूचना के अधिकार के जैसे कानूनों के क्रियान्वयन को लेकर तत्परता दिखा रही है वहां वनाधिकार कानून के लिये इतनी उदासीनता क्यों? उदासीनता का कारण मात्र अनभिज्ञता है, ऐसा नहीं है। पहला कारण है कि सरकारों की समुदायों को अधिकार देने की राजनैतिक मंशा ही नहीं है। दूसरा अभी भी सरकार अपने आप को दाता मानती है और वन समुदायों को लाभार्थी। तीसरा वनाधिकार कानून के मुकाबले रोज़गार गारंटी कानून में इसलिए ज्यादा रुचि है, क्योंकि इसमें करोड़ों रुपए हैं। इसलिए जिसको देखो वो नरेगा के पीछे भाग रहा है, वनाधिकार कानून में कुछ मिलने वाला नहीं, बल्कि उसमें बिना किसी लेन-देन के भौमिक अधिकारों को मान्यता देनी होगी जिसमें काफी झंझट की आशंका है।

रोमा/अशोक चौधरी

लेखक सामाजिक कार्यकर्ता हैं

हिन्दुस्तान

Hindustan

मानव जाति की मुक्ति की आशा सिर्फ भारतवर्ष है

कलकत्ता, १८ जून। 'विश्व के संकट काल में मानव जाति की मुक्ति के लिए मैं भारत पर ही एकमात्र आस्था और विश्वास रखता हूं।'

ये शब्द उस पत्र के हैं जो फ्रांस के प्रसिद्ध तत्ववेत्ता व साहित्य मर्मज्ञ मो. रोमांरोला ने कलकत्ता यूनिवर्सिटी द्वारा व्याख्यान देने का निमन्त्रण मिलने पर उसके जवाब में वाइस चांसलर श्री श्यामा प्रसाद मुकर्जी को लिखा है। कलकत्ता यूनिवर्सिटी ने आपको अगले साल के आरम्भ में कलकत्ता आने और विश्व-विद्यालय की ओर से एक व्याख्यान माला देने के वास्ते निमन्त्रण दिया था। निमंत्रण को अस्वीकार करते हुए आपने मो. मुकर्जी को निम्न पत्र भेजा है :- कलकत्ता यूनिवर्सिटी ने आप द्वारा मुझे कलकत्ता आने व व्याख्यान देने का निमंत्रण दिया है इसके लिए मैं कृतज्ञ हूं। निमंत्रण पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। इसका अर्थ है आपकी प्यारी मातृभूमि का दर्शन करना। उसको मैं प्यार करता हूं और उसका आदर करता हूं। दुर्भाग्य से मेरा स्वास्थ्य लम्बे सफर और आकस्मिक जलवायु परिवर्तन को बर्दाश्त नहीं कर सकता, अतः मैं आपका निमंत्रण स्वीकार करने में असमर्थ हूं। मैं वस्तुतः इसके लिए दुखी हूं।

सत्तर साल पहले, 19 जून, 1938 को प्रकाशित

परिशिष्ट - 7

LAND STRUGGLE

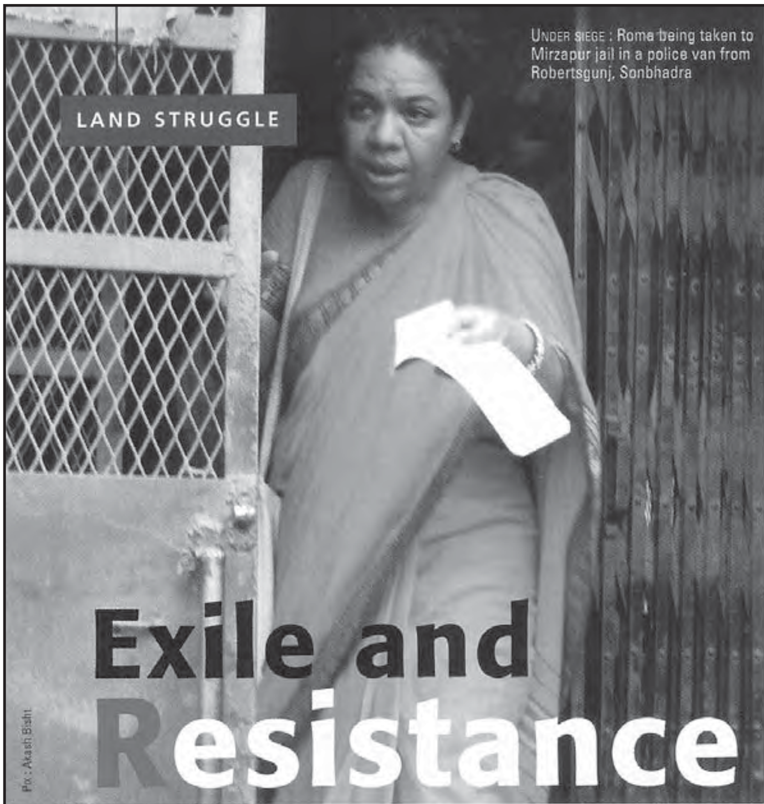

UNDER SIEGE : Roma being taken to Mirzapur jail in a police van from Robertsgunj, Sonbhadra

Pix : Akash Bisht

Exile and Resistance

In the sprawling forests of Sonbhadra, an epic land struggle by unarmed tribals and dalits is facing the armed might of police repression, corrupt forest department and local landlords

AKASH BISHT ROBERTSGUNJ, EASTERN UP

ROBERTSGUNJ, A SMALL, sleepy town in UP's Sonbhadra district, has become the epicentre of a major land rights struggle, especially after the arrest of several social activists and police repression. Roma, a woman leader of the Kaimur Kshetra Mahila Majdoor Kisan Sangharsh Samiti (KKMMKSS) and an active steering committee member of the National Forum of Forest People and Forest Workers (NFF-PFW), has been charged under the National Security Act (NSA) by the UP police. Her crime: she resurrected human and constitutional rights awareness amongst the landless poor in Sonbhadra with the slogan of *'Jo zameen sarkari hai, woh zameen humari hai'*, originally coined by Mayawati in 1996.

Besides, peaceful tribals are branded as Naxalites. Village homes face midnight raids and people are beaten up. Even women are brutally attacked.

Roma, along with three other social activists, who work with landless tribals and dalits in the abjectly backward and poor Kaimur region of eastern UP, was picked up from Robertsgunj in Sonbhadra district in early August on dubious charges framed by the police and forest department. "While Shanta Bhattacharya, Lalta Devi and Shyamlal Paswan have been charged with IPC 143, 144, 447, 34 and IFA 1927- 5/26 and 63, Roma has also been charged under 120(B) of the IPC," informs Ramesh Shukla, a lawyer representing Roma.

Sonbhadra is the largest and one of the poorest districts in eastern UP. Of its 6,788 sq km area, 3,782.86 sq km has forest cover. The locals call Sonbhadra the energy capital of India because of the vast natural and mineral resources the area possesses.

However, for several decades now, the Sonbhadra region and several other districts of eastern UP have been the focus of a protracted land struggle. The struggle is between the forest department and forest dwellers, mostly landless tribals and dalits, for the return of land that the local community claims is their traditional gram sabha land, illegally and forcibly taken over by the forest department in collusion with the police and local landlords. The forest department claims the land as its own and has reportedly refused to negotiate the issue or recognise the rights of these landless and economically impoverished indigenous communities.

The struggle dates back to 1950 when the Zamindari Abolition Act was passed and surplus land of landlords distributed among the poor. Later, as a step towards social and economic justice by way of providing land to the landless and agricultural labour, the Uttar Pradesh Imposition of Ceiling on Land Holding Act, 1960 (subsequently amended in 1972), was enforced in the district in1961. It replaced the UP Large Holding Tax Act, 1957. Under this Act, the maximum area of a holding was fixed at 16.19 hectares of fair quality land. If, however, the number of members of the landholder's family was more than five, he was allowed to retain for each additional member an area of 3.25 hectares, subject to a maximum of 9.72 hectares of such additional area.

"Everyone knows that upper-caste landlords registered large families and took land under names of their servant and cattle, and this is most disturbing to us. Lokpati Tripathi is one of the landlords who registered land under such dubious names but nothing has been done. While our land is forcibly taken away in the name of forests, no one is bothered to check the records of these landlords who are holding huge portions of land that should have been ours," rues Munnabhai, a tribal leader.

After the ceiling on Land Holding Act was implemented, the landlords didn't want to part ways with their land and lodged various cases in the court on the settlement issue. "Each landlord filed various cases on the distribution of land. This led to overcrowding of courts and delays in the distribution process. More than one lakh acres of land could not be distributed because of the delay in the judicial process

benefiting the landlords who continued to till these lands," informs Shukla.

Before Independence, large portions of forest land were under private owners. With the passage of an amendment to the Forest Act, 1927 in 1933, the forest department started taking control of the forests and the tribals and dalits working in these forests were thrown out. After much hue and cry, the government in 1986 ordered a survey of Sonbhadra district to assess the land situation but the survey was conducted in only 20 per cent of the villages and settlement was made only in those areas. This has become the main issue of dispute in the region.

After the passage of the Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act, 2006, the debate has shifted. This new law ensures land rights for the forest people on the disputed forestland and thus attempts to end the injustice against the poor, landless forest people. NFFPFW and its constituent KKMMKSS initiated a campaign in the Kaimur region to make the 'forest people' aware of their rights, in the light of the enactment of the Forest Act, 2006.

Roma pointed out to this reporter at the Robertsgunj district court while still in police custody. "The government arrested me and my colleagues on charges that don't make sense at all. The forest department filed an FIR against me at Vindangunj police station falsely charging us with inciting land-grabbing by dalits and adivasis of the area. The administration said that my slogan of *'Jo zameen sarkari hai, woh zameen humari hai'* incited the crowds. The truth is: I only used a slogan that was used by Chief Minister Mayawati in 1996. Why didn't they arrest her when she declared this slogan publicly and repeatedly?" complains Roma.

Since the enactment of the Forest Act in December 2006, tension between the forest department and KKMMKSS has heightened. "The passage of the Forest Act in 2006 by Parliament and Mayawati's declaration to distribute land to the landless after August 1, 2007 gave more teeth to the movement but it also threatened land-owners and forest officials who virtually owned the land of these poor farmers. In collusion with the police they are doing every bit to suppress the movement and brand these peaceful protestors and dalits and tribals as Naxalites. The Forest department has become the new zamindars in Sonbhadra," says Roma.

However, after the arrest of Roma and her colleagues, the locals blocked roads and held strong protests with women as catalysts and at vanguard. Consequently, in what seems a clear act of vengeance, the police on August 10 came in two jeeps with upper-caste landlords to Chandouli village near Robertsgunj in the night. Heavily armed, they demanded the villagers to produce Bachalal, an active member of the KKMMKSS, before them. When they did not find Bachalal, they barged into his house and attacked his sister-in-law and pregnant sister. They misbehaved with them and other women of the village.

His sister later that night delivered a baby boy with injuries on his head. "I haven't gone home for the past 10 days as I fear for my life because everyday goons of local landlords come to my house looking for me. I am even scared to go to the police station as they might take me to the forest and kill me and then brand me as a Naxalite," says Bachalal.

The administration is brazenly toeing the police line. They are blaming Roma and her colleagues for instigating people to organise a "violent struggle to grab land". "Roma's attitude is positive but the speeches she gives are very negative. She incites the crowd to grab land. The Forest Act, 2006, has not been implemented yet and she cannot go on saying *'Jo Zameen sarkari hain, woh zameen humari hai'*. I know even Mayawatiji raised the same slogan in 1996 but she is a political person and can get away with it," explains Rajendra Prasad Singh, District Magistrate, Sonbhadra.

He, however, agrees that tribals have not benefited from any of the land reforms and blames the forest department for making the situation so difficult. Says Singh, "I know that there are officials who have the tendency to benefit themselves from all these schemes and suppress the tribals. Their human tendency is to benefit from the poor and impoverished and that's what the forest department is doing. But even Roma is not right. There needs to be a dialogue and both parties should agree on issues; only then can we arrive at a peaceful solution."

Meanwhile, Shanta has been released on bail while Roma, Shamla and Paswan are still under police custody. NSA has also been withdrawn against Roma and the state cabinet has ordered to distribute the gram sabha land amongst the tribals and dalits who had been tilling the land before August 13, 2007. The Mayawati government has also asked her principal secretary to visit the area and submit an unbiased report to her on the entire land issue in Sonbhadra. ■

WAITING FOR JUSTICE: Tribal women sitting on dharna in Robertsgunj, Sonbhadra

Peaceful tribals are branded as Naxalites. Village homes face midnight raids and people are beaten up. Even women are brutally attacked

परिशिष्ट – 8

राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक

डेली न्यूज़ ऐक्टिविस्ट

शब्द शब्द संघर्ष

वर्ष-1, अंक-167, लखनऊ, शुक्रवार, 4 अप्रैल, 2008, पृष्ठ- 16+4, आमंत्रण मूल

वनवासियों को देने होंगे अधिकार

आखिर सरकार को माओवादियों के प्रभाव को रोकने के लिए वनाधिकार कानून बनाने की सुधि तो आई लेकिन इस कानून के प्रवर्तन को लेकर शासक वर्ग में ही बैठे लोगों ने कई तरह के दावपेंच लगा इसे लागू न होने देने की भरपूर कोशिश की है।

● रोमा

आदिवासियों एवं अन्य परम्परागत समुदायों को वन, वनभूमि एवं वनोपज पर मालिकाना हक प्रदान करने वाला कानून अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परंपरागत समुदाय (वनाधिकार को मान्यता कानून-2006) को आखिर काफी विरोध और अड़चनों के बाद लागू कर ही दिया गया। इस कानून को 2 जनवरी 2006 में महामहिम राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बाद गजट कर दिया गया था। परंतु प्रस्तावना में ऐतिहासिक अन्याय की बात कबूलने के बावजूद आजाद भारत में दोबारा कानून को लागू करने में विलम्ब कर एक बार फिर वन समुदायों के साथ ऐतिहासिक अन्याय किया गया। वनाधिकार पर काम करने वाले तमाम संगठन कई खामियों के बावजूद इस कानून का स्वागत करते हैं। ज्ञातव्य है कि यह पहला ऐसा विशेष कानून है जो कि आदिवासियों व अन्य परंपरागत समुदायों के वनों, वनभूमि एवं वनोपज पर अधिकारों को मान्यता देता है। शायद पहली बार वन समुदायों को एक तरह से राजनीतिक अधिकार मिला है। अगर देखा जाए तो यह कानून आदिवासियों एवं वनसमुदायों के सैकड़ों वर्षों के संघर्ष की देन है। अंग्रेजों के खिलाफ सबसे पहला स्वतंत्रता संग्राम प्राकृतिक संसाधनों को बचाने के लिए आदिवासियों द्वारा ही छेड़ा गया था। उस समय उनका कहीं अता पता नहीं था जिन्हें हम आज आजादी के नायक के रूप में जानते हैं। तिलका मांझी, सिद्धू कान्हू, बिरसा मुंडा आदि कितने अनगिनत गुमनाम आदिवासी क्रांतिकारी थे जिन्होंने आज से 200 वर्ष पूर्व अंग्रेजी हुकूमत की चूलें हिला दी थीं। परंतु अफसोस कि इन महान क्रांतिकारी वीरों का इतिहास पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों में कहीं भी जिक्र तक नहीं है। और तो और विडम्बना यह है कि बिरसा मुंडा जैसे शहीदों को आज भी कई राज्यों में नक्सली कहा जाता है।

यह कानून निश्चित रूप से वनविभाग की जमींदारी खत्म करने में एक कारगर कदम साबित होगा। वन विभाग देश की 23 फीसदी भूमि को अवैध रूप से अपने कब्जे में रखे हुए है जबकि हमारे देश में जंगल केवल 9 प्रतिशत ही रह गए हैं। आजादी के इतने सालों में आखिर जंगलों की इतनी दुर्गति क्यों हुई व जंगल बढ़ने के बजाय घटे क्यों जबकि वनभूमि के क्षेत्रफल में लगातार बढ़ोत्तरी होती गई?

यह एक चिंता का विषय है जो कि वनविभाग के वजूद पर सवाल खड़ा करता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 31 (1) में भूमि सुधार को अपनाने की बात कही गई है और संसाधनों के समान रूप से बंटवारे की बात कही गई है। भूमि सुधार कानूनों के अंदर राजस्व भूमि को तो शामिल किया गया किंतु वनों को भूमि सुधार कानून के दायरे से बाहर रखा गया। बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश में प्राइवेट फारेस्ट कानून तथा अन्य राज्यों में अन्य कानूनों के तहत ठीक आजादी के बाद वन विभाग को लाखों हेक्टेयर भूमि सौंप इस विभाग को देश का सबसे बड़ा जमींदार बना दिया गया। उदाहरण के तौर पर मध्य प्रदेश में 1956 में पुनर्गठन के दौरान 94.781 लाख हेक्टेयर भूमि सार्वजनिक उपयोग के तहत राजस्व रिकार्डों में दर्ज थी जिसमें 91.274 लाख हेक्टेयर वन भूमि वनविभाग के सीधे नियंत्रण में सौंपी गई। वर्तमान समय में बैतुल के सतपुड़ा लैंड सर्वे एंड ट्रेनिंग सेंटर के माध्यम से विधानसभा में प्रश्न उठाकर विधान सभा द्वारा यह सारी भूमि राजस्व विभाग को वापिस सौंपने का आदेश दे दिया गया है। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के कैमूर क्षेत्र में भी 533 ग्रामों की लाखों हेक्टेयर भूमि को भारतीय वन अधिनियम 1927 की धारा (अ) के तहत गलत प्रक्रिया अपनाकर वन विभाग ने अपने नियंत्रण में ले लिया तथा आज भी धारा- 4 के अधीन लाखों हेक्टेयर विवादित भूमि स्थानीय तथा हाईकोर्ट में लंबित वादों के कारण फंसी हुई है।

वन विभाग और राजस्व विभाग के ही रिकार्डों में भारी हेराफेरी के चलते इन सभी वन क्षेत्रों में चाहे वे आंध्र प्रदेश, झारखंड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ उड़ीसा या बंगाल हो, राष्ट्रीय विकास एवं औद्योगीकरण के नाम पर आदिवासियों एवं अन्य वन समुदायों के संसाधनों की भारी लूट की गई तथा आजाद भारत में उन्हें 'बाहरी' व 'अतिक्रमणकारी' बना दिया गया। इन्हीं इलाकों में अलगाववाद के चलते माओवादी संगठनों की जड़ें मजबूत होती चली गईं। आखिर सरकारों को माओवादियों के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए 'वनाधिकार कानून' बनाने की सुधि आई और यूपीए सरकार ने अपने न्यूनतम साझा कार्यक्रम में वनों में रहने वाले आदिवासी एवं अन्य समुदायों को उनके अधिकार कानूनी रूप से देने का फैसला लिया। परंतु इस कानून के प्रवर्तन को लेकर दोबारा शासक वर्ग में ही बैठे लोगों, नौकरशाहों, वन विभाग के आला अफसरों तथा तथाकथित वन्य जंतु प्रेमियों ने कई तरह के दावपेंच लगा इस कानून को लागू न होने देने की भरपूर कोशिश की। इस वर्ग द्वारा लगातार यह प्रचार किया जा रहा है कि अगर जंगल आदिवासियों को सौंप दिए जाएंगे तो वन बरबाद हो जाएंगे तथा पर्यावरण को भारी नुकसान होगा। और तो और उत्तर प्रदेश के वन विभाग के एक आला अफसर ने वन विभाग द्वारा आयोजित एक बैठक में इस कानून की मंशा पर ही सवाल उठा दिए जो कि संसद की घोर अवमानना है।

इसी उठा पटक के चलते कानून लागू करने में भारी विलम्ब किए जाने का साफ संदेश जाता है कि केंद्र एवं राज्य सरकारें दोनों ही इस कानून को लागू करने की राजनीतिक इच्छा नहीं रखती हैं। चूंकि सरकारों को यह भी डर है कि एक बार जंगल, वनभूमि व वनोपज पर वन समुदायों का मालिकाना हक स्थापित हो जाएगा तो वे देश की प्रचुर खनिज संपदा, प्राकृतिक संपदा की अंधी लूट नहीं कर पाएंगी। सरकार की इस कानून के प्रति उदासीनता इसी से साबित हो जाती है, जब अक्टूबर 2006 में जनादेश रैली में प्रधानमंत्री द्वारा भूमि आयोग समिति तो गठित की गई परंतु वनाधिकार कानून, 2006 जिसमें उन्हीं तबकों के सामुदायिक या अन्य भौमिक अधिकार जो प्रदान किए गए उन्हें लागू करने के लिए एक भी शब्द नहीं बोला गया।

अब रही बात उच्च एवं मध्यवर्गीय तबकों की जो आदिवासियों पर इस कानून के तहत वनों को नष्ट करने का आरोप लगा रहे हैं। उन्हें पहले अपने आप से सवाल करना होगा कि उनके उच्च स्तरीय जीवन ने आखिर पर्यावरण को कितना फायदा पहुंचाया है? आदिवासियों से ज्यादा राष्ट्रीय विकास के नाम पर परियोजनाओं के अंधाधुंध पर्यावरणीय मानकों के उल्लंघन तथा खनिज संपदा के दोहन के मानकों के उल्लघंन पर प्रश्न करना होगा जिसका सीधा-सीधा लाभ बड़े शहरों में बैठे यही लोग उठा रहे हैं। और अगर वन समुदायों को वनों को नष्ट करना ही होता तो वे बहुत पहले कर चुके होते। ध्यान रहे हमारे समाज का यही एक ऐसा तबका है जो वनों, पर्यावरण व प्राकृतिक संसाधनों के बारें में पारम्परिक रूप से समृद्ध जानकारी रखता है और उसे बचाने की तकनीक जानता है। अब समय आ गया है कि उनकी चीज उनको वापस लौटाई जाए ताकि पर्यावरण का विनाश जो हमारे सामने 'ग्लोबल वार्मिंग' के रूप में आ रहा है, उससे लड़ने के लिए बड़ी सेना तैयार की जा सके। वनाधिकार कानून- 2006 पूरे समाज, लोकतंत्र, सार्वभौमिकता की रक्षा करने का कानून है। इसे लागू करने में प्रत्येक नागरिक को सहयोग करना चाहिए।

परिशिष्ट – 9

सम्पादकीय — 8 —
हिन्दुस्तान नई दिल्ली, मंगलवार, 8 अप्रैल, 2008

नक्सलवाद का हौवा और जमीनी हकीकत

रोमा

सरकारी आंकड़ों के अनुसार आज देश के 16 राज्यों में जो 200 जिले नक्सलवाद से पीड़ित हैं। इनमें से एक राज्य है उत्तर प्रदेश। हांलाकि अगर आंध्र प्रदेश, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश के नक्सलवाद से जोड़कर देखा जाए तो राष्ट्रीय स्तर पर उत्तर प्रदेश में पनप रहे नक्सलवाद यानी माओवादी संगठन की न के बराबर चर्चा है। इसका सबसे बड़ा कारण है कि उत्तर प्रदेश का माओवाद अन्य राज्यों से बिल्कुल भिन्न है। यहां के माओवाद की उत्पत्ति माओवादी संगठनों के जरिये कम, प्रशासन के जरिये ज्यादा है। उत्तर प्रदेश का कथित नक्सलवाद कैमूर क्षेत्र के तीन जिलों, मिर्ज़ापुर, चन्दौली और सोनभद्र एवं कुछ हद तक बुन्देलखंड में फैला है। इस बात का भी जमकर प्रचार किया जाता है कि नक्सली संगठनों की सबसे ज्यादा गतिविधियां कैमूर क्षेत्र में हैं चूंकि यह क्षेत्र झारखंड, बिहार, छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश की सीमा से सटा हुआ है। इस क्षेत्र में इन संगठनों की गतिविधियां बिल्कुल नहीं हैं, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता।

वैसे कैमूर एक ऐसा क्षेत्र है, जो माओवाद को पनपने के लिये अनुकूल परिस्थितियां प्रदान करता है। समय रहते आदिवासियों को जनजाति का दर्जा न मिलना, उनकी ज़मीनों और जंगल में जबरन बेदखली, फर्जी एनकाउंटर, सामंती अत्याचार व स्थानीय लोगों के अधिकारों के हनन से उद्योगों की स्थापना यहां नक्सलवादियों को जगह मिलने के मूल कारण हैं। इसके लिए अगर कोई जिम्मेदार है तो भूमि सुधार कानूनों को सही प्रकार से लागू नहीं करना और राजस्व व वन विभाग द्वारा सामंतों और पूंजीपतियों से मिलकर भूमि के रिकार्डों में भारी हेरा-फेरी। फिर यहां खनिज और प्राकृतिक संसाधनों की अंधाधुंध लूट भी चली है। 141 गांव की रिहन्द बांध में डूब की भेंट चढ़ गए। 20,000 डूब के चलते लापता हुए। चोपन, नौगढ़, पन्नूगंज, राबर्ट्सगंज, कोन, हलिया, मड़िहान, राजगढ़, सक्तेशगढ़ आदि कितने थाने हैं जहां पर आज भी सामंती हुकूमत चलती है। आज भी गरीब दलित, आदिवासी, महिला रिपोर्ट दर्ज कराने से डरते हैं। एक तरह से देखा जाए तो इन इलाकों में माओवादी संगठनों के पनपने से अचम्भित नहीं होना चाहिए, हालांकि उत्तर प्रदेश में माओवादी संगठन की जड़ें अभी भी उतनी मजबूत नहीं हैं जितनी कि अन्य प्रदेशों में। अभी भी यहां सामंतों का ही वर्चस्व कायम है, जिसका प्रमाण बड़े पैमाने पर फर्जी मुठभेड़ों, फर्जी गिरफ्तारियों एवं फर्जी केसों में मिलता है। सन् 2000 में जनपद मिर्जापुर के भवानीपुर में 16 लोगों के साथ 12 वर्षीय छात्र कल्लू की हत्या, जनपद सोनभद्र में सन् 2001 में केतार के मदन कुशवाहा और गुलाब का फर्जी एनकाउंटर। सन् 2002 में महुली में महेश्वर गोणं और उसके बेटे राजकुमार का फर्जी एनकाउंटर। सन् 2002 में 42 लोगों पर फर्जी पोटा लगाना। लालव्रत कोल और देवनाथ को कई बार मृत घोषित करना। सन् 2003 करहिया में फर्जी मुठभेड़, रनटोला में दो नौजवानों की फर्जी मुठभेड़ (जिसमें चार दरोगा समेत 16 पुलिसकर्मी अभी जेल में सजा काट रहे हैं)। ऐसे अनगिनत केस हैं, जहां सीधे-सीधे हमला आदिवासियों, दलितों पर एवं उनके अधिकारों के लिए लड़ने वाले मानवाधिकार कार्यकर्ताओं पर है। परन्तु ऐसा नहीं कि यहां नक्सली वारदातें नहीं हुई, एक जवाबी हमले में सन् 2005 में हिनौता घाट चन्दौली में माओवादियों ने पुलिस की गाड़ी उड़ाई जिसमें 17 पीएसी के जवान मारे गए। इसमें सबसे चौंकाने वाला तथ्य यह था कि इस विस्फोट में बारूद को सिलथम पटना रेंज के वनविभाग के एक रेंजर ने माओवादियों को बंद पड़ी चुर्क सीमेंट फैक्ट्री से बारूद चोरी कर सप्लाई किया था। लेकिन आज तक उस पर कोई कार्यवाही नहीं हुई। इस घटना में भी असली माओवादी तो पुलिस के हाथ लगे नहीं, परन्तु इस मामले में भी सोनभद्र और चन्दौली के सैकड़ों बेगुनाह युवक अभी भी जेल में सड़ रहे हैं। वैसे भी आजकल यहां के समाज का एक ही चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें एक तरफ राजसत्ता है और दूसरी तरफ जवाबी हिंसा के लिए माओवादी संगठन। परन्तु इन दोनों के बीच जुल्म की चक्की में पिसता आम आदमी भी है, जिसके पास अपनी तकलीफ है और अपनी चेतना है उसके बारे में कहीं भी कोई चर्चा नहीं है। वैसे यहां पर आम जनता यानी गरीब वर्ग, आदिवासी, दलित, इन दोनों से त्रस्त है, खासतौर पर महिलाएं जिनको दोनों ओर के हमले सहने पड़ते हैं क्योंकि कहीं न कहीं राजसत्ता और माओवादियों के बीच उनकी जगह खत्म होती जा रही है। चिन्ता का विषय है कि इस जगह को कम करने में खुद सरकार या यहां की स्थानीय राजनीति ही लगी है ताकि लोग बुनियादी विकास के ढांचे के सवाल को न उठा सकें। वहीं प्रशासन के लिए भी नक्सलवाद का हौवा खड़ा करना जरूरी है ताकि लोगों पर दमन करना आसान हो सके। वे कतई नहीं चाहते कि इन इलाकों में लोकतांत्रिक प्रक्रिया बढ़े, क्योंकि नक्सलवाद के नाम पर आने वाला तमाम फंड पूर्ण रुप से बंद हो जाएगा। दूसरी ओर आम लोगों द्वारा इस जगह को बनाने के लिये एक दबाव बन रहा है। एक तो स्थानीय स्तर पर और एक राजनैतिक स्तर पर, यह एक सच्चाई है कि मायावती सरकार के सत्तासीन होते ही माओवादी संगठनों का फैलाव बहुत ही सिकुड़ कर रह जाता है, यह पहले भी हुआ है और यह अब भी हो रहा है। मायावती के ही शासन काल में सन् 2002 में 42 दलित आदिवासियों पर पोटा हटाया गया है और अभी हाल ही में छह अन्य कथित नक्सलवादियों को दोषमुक्त किया गया। स्थानीय स्तर पर इतने अत्याचार और विषमता के बाद भी गरीब तबके माओवादी संगठन में शामिल नहीं हो रहे। माओवादी संगठन भी कामयाब हों ऐसा देखने को नहीं मिल रहा, वे भी एक भटकाव की स्थिति में है और वे कैमूर की पेचीदा परिस्थितियों के प्रति कोई सकारात्मक पहल भी नहीं कर पाए। हालांकि इसके विपरीत यह तथ्य शायद हर वन क्षेत्र में मौजूद होगा कि आदिवासी एवं अन्य गरीब तबके, खासतौर पर महिलाएं अपनी चेतना के आधार पर जहां राजसत्ता को चुनौती दे रही हैं वहीं माओवादी संगठनों को भी यह संदेश दे रही हैं कि उनके द्वारा दिखाए जाने वाले जन विरोधी हथियार बंद रास्तों पर चल कर अपने छीने गए अधिकारों को पाने की आखिरी मंजिल तक पहुंचना नामुकिन है।

उत्तर प्रदेश का माओवाद अन्य राज्यों से बिल्कुल भिन्न है। यहां के माओवाद की उत्पत्ति माओवादी संगठनों के जरिये कम, प्रशासन के जरिये ज्यादा है। उत्तर प्रदेश का कथित नक्सलवाद कैमूर क्षेत्र के तीन जिलों, मिर्ज़ापुर, चन्दौली और सोनभद्र और कुछ हद तक बुन्देलखंड में फैला है।

भूपेन मंडल

लेखिका मानवाधिकार कार्यकर्ता हैं और उत्तर प्रदेश के नक्सलवाद प्रभावित इलाकों में काम कर रही हैं

जागोरी
JAGORI

बी-114, शिवालिक, मालवीय नगर
नई दिल्ली-110017

दूरभाष : 91-11-26691219, 26691220
टेली फेक्स : 91-11-26691221

ई-मेल : jagori@jagori.org
वेबसाइट : www.jagori.com